Chapter. 6

: षष्ठ अध्याय :

:: पौराणिक उपन्यासों में निरूपित परिवेश ::

: षष्ठ अध्याय :

:: पौराणिक उपन्यासों में निरूपित परिवेश ::

प्रास्ताविक:

हमारा शोध-प्रबंध पौराणिक उपन्यासों के संदर्भ में है। अत: प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम आलोच्य उपन्यासों में निरुपित परिवेश-चित्रण का है। परिवेश को वातावरण या देशकाल भी कहते हैं। देशकाल में दो शब्द हैं—देश और काल। देश से अभिप्राय स्थान-विशेष से है। स्थान में प्रदेश, अंचल, राज्य, देश इत्यादि आते हैं। पौराणिक उपन्यासों में 'देश' का तत्व अधिक व्यापक होता है, क्योंकि सामाजिक या मनोवैज्ञानिक प्रकार के उपन्यासों में 'देश' का तात्पर्य उनमें निरुपित पात्रों के स्थान=विशेष से होता है। आंचलिक उपन्यास में तो केवल एक अंचल-विशेष,, एक गांव-विशेष को ही लिया जाता है। इस दृष्टि से पौराणिक उपन्यासों में 'देश' का व्याप विस्तृत ही, कुछ अधिक विस्तृत ही होता है। उदाहरणतया यदि हम 'वयं रक्षाम:' को लेते हैं तो उसमें भारत सहित दक्षिण-एशिया के कई द्वीप-समूह, अफ़्रिका, अरबस्तान, अफ़घानिस्तान आदि आ सकते हैं।[1] डॉ. नरेन्द्र कोहली के रामायण पर आधृत उपन्यासों में भी पूरा भारत, श्रीलंका तथा दक्षिण के कुछ द्वीप-समूह आ जाते हैं। वही स्थिति महाभारत पर आधृत उपन्यासों की है। उसमें तो पांडवों को वनवास तथा अर्जुन की बारह वर्ष की यात्रा भी निहित है, तो एक तरह से पूरे भारत-वर्ष की परिक्रमा हो जाती है। 'देशकाल' में दूसरा शब्द 'काल' है। अन्य औपन्यासिक विधाओं की तुलना में 'काल' का

तत्व भी यहां अधिक व्यापक होता है। रामायण का समय लगभग छः-सात हजार साल पुराना है, तो महाभारत का काल लगभग तीन चार हजार साल पहले का है। देशकाल या परिवेश में इन दो तत्वों से जुड़ा हुआ सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश होता है जिसमें किसी काल-विशेष की कई सारी बातें शामिल रहती है, जैसे—सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक परिवेश, धार्मिक-नैतिक मान्यताएं, रीति-रिवाज, पहिनावा, अलंकार-शृंगार, जीवन-पद्धति, भाषा आदि-आदि। अतः प्रस्तुत अध्याय में इन सब बातों पर पौराणिक उपन्यासों को केन्द्र में रखकर चर्चा होगी।

भौगोलिक परिवेश:

भौगोलिक परिवेश का तात्पर्य ऊपर जिन दो तत्वों की बात की है, उनमें से 'देश' तत्व से है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'वयं रक्षामः' उपन्यास के प्रारंभिक परिच्छेदों में प्राचीन समय के बहुत-से प्रदेशों का विवरण उपलब्ध होता है। प्रथम परिच्छेद में बालद्वीप और आन्ध्रालय का उल्लेख मिलता है। आजकल जिसे आस्ट्रिलिया कहा जाता है, वही सात हजार साल पहले आन्ध्रालय था।[2]

प्रस्तुत उपन्यास में जो भौगोलिक परिवेश है वह लगभग सात हजार वर्ष पहले से शुरू होता है। उन दिनों भारत की भौगोलिक सीमाएं आज के जैसी नहीं थीं। आन्ध्रालय से लेकर आंध्रद्वीप तक बाली, यवद्वीप, स्वर्णद्वीप लंका, सुमात्रा आदि द्वीप समूह स्थल-संश्लिष्ट थे और इन द्वीपों नें नर, नाग, देव, दैत्य, दानव, असुर, मानुष, आर्य, व्रात्य सभी नृवंश के जन एकसाथ ही रहते थे। कुशद्वीप (अफ्रिका) भी तब तक भारतवर्ष से भूमि-संश्लिष्ट था। उस समय तक विंध्य के उसपार भारतवर्ष के उत्तरापथ में आर्यावर्त था, जिसमें सूर्यमडल चन्द्रमंडल में इला से बना एलकुल राज्य करता था। उत्तरापथ से ऊपर भारत वर्ष के सीमान्त पर पिशाचों, गन्धर्वों, किन्नरों, देवों और असुरों के जनपद थे। एलावर्त आदित्यों का मूल स्थान था, उरपुर और अत्रिपत्तन में देवों का आवास था और उनके पास काश्यप तट पर चारों और दूर तक असुर, गरुड़, नाग, दानव, दैत्यों के खण्डराज्य फ़ैले हुए थे"।[3]

इसी उपन्यास में रावण की विजय-यात्रा के संदर्भ में लेखक जो सूचनाएं देते हैं, उनसे भी तत्कालीन भौगोलिक परिवेश का पता चलता है। यथा—

"वह मेधावी और तपस्वी तरुण उन दिनों आन्ध्रालय महाद्वीप से अपने साहसिक वीर साथियों सहित उत्तर-पश्चिम द्वीप-समूहों को जय करता हुआ स्वर्ण लंका की और जा रहा था। उसने भारत के समस्त दक्षिणी द्वीप-समूहों—अंगद्वीप(सुमात्रा), यवद्वीप (जावा), मलयद्वीप (मलाया), शंखद्वीप (बोर्नियो), कुशद्वीप (अफ़्रिका) और वाराहद्वीप (मेडागास्कर) पर अधिकार कर लिया था"।[4]

जिस समय की बात यहां चल रही है, उस समय लंका पर रावण के सौतेले भाई वैश्रवण कुबेर का कब्जा था। [5] यहां 'कब्जा' शब्द का प्रयोग जान-बूझकर किया गया है, क्योंकि वास्तव में यह नगरी दैत्यों की थी और उस पर हेति और प्रहेति नामक दो दैत्य राज्य करते थे। उनकी तीसरी पीढ़ी में माली, सुमाली और माल्यवान हुए। उनके समय जो देवासुर संग्राम हुआ उसमें माली मारा गया। सुमाली और माल्यवान दैत्यराज के पतन से हतप्रभ, विक्षिप्त और शोकग्रस्त हो लज्जा, भय, क्षोभ तथा ग्लानि के मारे पाताल में जाकर छिप गए। "आजकल जिस स्थान को एबीसीनिया कहते हैं, उन दिनों उसे पाताल कहेते थे।"[6]

अपनी स्वर्ण-लंका वापस लेने के लिए सुमाली अपनी षोडशी पुत्री कैकेसी को पौलस्त्य पुत्र विश्रवा के पास भेजता है। योजना यह है कि कैकेसी विश्रवा से पुत्र-प्राप्ति की इच्छा व्यकत करे। सुमाली को विश्वास था कि कैकेसी-विश्रवा का वह पुत्र ही उनके वंश का उद्धारक होगा और वही उनको उनकी लंका वापस दिलायेगा। कैकेसी-विश्रवा से पुत्र होता है, वही है वैश्रवण रावण, जो अपने सौतेले भाई धनकुबेर को पराजित कर उसे बन्दी बना देता है।

इसी उपन्यास में तत्कालीन भौगोलिक परिवेश से सम्बद्ध अनेक जानकारियां मिलती हैं, जैसे आजकल कुर्दिस्तान कहते हैं, जो आरमीनिया के नीचे है, वही उस समय का उत्तरकुरु था।[7] अपवर्त वर्तमान ईरान का ही एक प्रदेश था,[8] आज भी ईरान का 'यमथल'

नामक स्थान यम की स्मृति ताजी कराता है,[9] पौराणिक शनि को यूनान देश का राज्य मिला था,[10] उस काल में सूर्य की चार राजधानियां थीं आदित्यनगर, कश्यपनगर, इन्द्रवन और भ्रण्डार— आज के अदन का प्राचीन नाम आदित्यपुर था और वह सूर्य की राजधानी थी;[11] हिरण्यकशिपु की राजधानी कश्यप सागर तट पर थी जिसका नाम हिरण्यपुरी, पर्शिया का लुट प्रदेश यहां आया हुआ है;[12] हिरण्यकशिपु का भाई हिरण्याक्ष बेबीलोन का अधिपति था;[13] हिरण्यकशिपु महाशक्तिशाली दैत्य था और उससे देव बहुत ही भयभीत थे, उसने उत्तर-पश्चिम का फ़ारस और समूचा अफ़गानिस्तान अपने अधीन कर लिया था, बेबीलोन और उसके आसपास का प्रदेश हिरण्याक्ष के अधीन था;[14] यूरोप का उत्तर-पश्चिमी प्रदेश जिसे आजकल नोर्वे कहते हैं, वहां वराह-वंशियों का राज्य था;[15] हिरण्यकशिपु का वध नृसिंह ने किया था, उसमें उसके ही पुत्र प्रहलाद का नृसिंह ने अपने पक्ष में मिला लिया था; नृसिंह के वंशज आज भा ईरान में रहते हैं और 'नृग्रिटो' कहलाते हैं और नृग्रिटो जाति के लोग उत्तरी तुर्कीस्तान से फ़ारस की खाड़ी तक फ़ैले हुए थे;[16] आदि-आदि।

रावण अपनी विजय-यात्रा में बाली के वज्रनाथ नामक नागराज को पराजित कर बाली-द्वीप पर अपना कब्जा कर लेता है। उसके बाद दानवराज मकराक्ष से बाली के आसपास के छोटे-मोटे सब द्वीप भी जीत लेता है।[17] बाली द्वीप के दक्षिणांचल में सुम्बा नामक छोटा-सा द्वीप था। रावण का परिचय उस द्वीप के स्वामी मयदानय से होता है। देवों में जो कार्य विश्वकर्मा संपन्न करते थे, दानवों के पक्ष में वही काम मय करता था। इस द्वीप में मयदानव की कन्या मंदोदरी से वह विवाह करता है।[18] इस प्रकार रावण अपनी 'रक्ष-संस्कृति' की शक्ति बढ़ाता जाता है और अंततः स्वर्ण-लंका पर कब्जा करने में सफ़ल हो जाता है। मंदोदरी से उत्पन्न पुत्र मेघनाद इन्द्र को भी बन्दी बना लेता है। उसके पूर्व रावण वरुण, अग्नि इत्यादि देवों के राज्य पर तो कब्जा कर ही चुका था। ध्यान रहे कि यह देवभूमि आर्याअर्त के उत्तर की हिमालय के विभिन्न शिखरों वाली

भूमि ही है। और यह भी बताया जा चुका है कि देव की गणना भी मानव-नृवंश में ही होती है। जैसे दानव, दैत्य, नाग इत्यादि थे, ऐसे ही देव भी थे। रावण ने सब देवों को (महादेव को छोड़कर) बन्दी बना दिया था। इसलिए उसको दशानन या दशग्रीव कहा गया। कोई सचमुच में उसके दश आनन नहीं थे। देवों के राज्य पर कब्जा करने के बाद रावण का ध्यान आर्यावर्त की ओर जाता है और आर्यावर्त के दक्षिण का प्रदेश , अर्थात् वर्तमान केरल, तमिलनाडु, आंध्र, कर्नाटक आदि राज्य, वह जीत लेता है जिसे दण्ड्कारण्य कहा गया है। बहन सूर्पनखा के पति-प्रेमी विद्युतजिह्वा का वध रावण ने किया था क्योंकि वह रावण की 'रक्ष-संस्कृति' को नकारता है। इससे दु:खी निराश व क्रुद्ध सूर्पनखा को प्रसन्न करने के लिए अपने भाई खर-दूषण के संरक्षण में उसे दण्डकारण्य की अधिष्ठात्री बना देता है। इस प्रकार रामायण काल तक रावण सम्पूर्ण दक्षिण एशिया, देवभूमि हिमालय तथा दक्षिण भारत पर कब्जा कर चुका था।

अतः रामायण काल के भौगोलिक परिवेश पर दृष्टिपात करें तो दक्षिण-एशिया के तमाम द्वीप-समूह जिनका उल्लेख पूर्ववर्ती पृष्ठों में किया गया है, श्रीलंका, दक्षिण भारत, उत्तर भारत, पश्चिम-दक्षिण भारत, उत्तर-पश्चिम भारत, उत्तर-कुरु (वर्तमान उत्तरांचल) आदि का समावेश उसमें होता है। उत्तर बिहार की जनकपुरी में मिथिला-नरेश सीरध्वज जनक का राज्य था। उसके नीचे दक्षिण में कोशल का राज्य था, जिसकी राजधानी अयोध्या थी और राजा दशरथ थे।

रामायण-महाभारत काल के जो स्थान हैं उनकी भौगोलिक स्थिति कुछ इस प्रकार है – अगस्त्य-आश्रम = नासिक के पास इगतपुरी एक स्टेशन है, अवंती = उज्जैन, अहिछत्र = द्रुपद से आधे राज्य के रूप में द्रोण ने छिना था, वह बरेली के पास स्थित है; कण्वाश्रम = बजनौर के पास; किष्किंधा = तुंगभद्रा नदी के उत्तर तट पर; कुशस्थली = काठियावाड़ (सौराष्ट्र) में द्वारिका के पास; गंधमादन = बदरिकाश्रम के उत्तर-पूर्व में स्थित पर्वतीय भाग; गांधार = पेशावर; चित्रकूट = एक प्रसिद्ध पर्वत जो प्रयाग से 27 कोस दक्षिण की ओर है; चेदि = बुंदेलखण्ड का दक्षिणी भाग और जबलपुर का

उत्तरी भाग; जनस्थान = औरंगाबाद; तक्षशिला = झेलम के तट पर अटक और रावलपिंडी के मध्य बसा हुआ नगर; त्रिगर्त – जालंधर जिला (पंजाब); दंडकारण्य = विंध्याचल से गोदावरी तक फैला स्थान; देवगिरि = दौलताबाद; देवपत्तन = प्रभास क्षेत्र, काठियावाड़ में स्थित सोमनाथ का मंदिर; नंदगांव = वृन्दावन के निकट का एक गांव; नैमिषारण्य = अवध के सीतापुर नामक जिले का एक स्थान; पंचवटी = नासिक के पास गोदावरी नदी के तट पर स्थित प्रदेश; प्राग्ज्योतिष = आसाम स्थित कामरूप प्रदेश; मगध = बिहार; मद्र = रावी और चिनाब के मध्य का पंजाब स्थित प्रदेश; रैवतक = गिरनार पर्वत; वारणावत = मेरठ जिले का एक स्थान; विदेह = जनकपुर; वेत्रवती = बुंदेलखण्ड की बेतवा नदी; शूरसेन = मथुरा राजधानी वाला प्रांत; श्रृंगवेरपुर = प्रतापगढ़ जिले में स्थित सिगनौर नामक गांव; हस्तिनापुर = दिल्ली के पूर्वोत्तर में स्थित एक स्थान आदि-आदि।[19]

पौराणिक उपन्यासों में काल-विभावना :

पौराणिक उपन्यासकारों ने जिस काल या समय की बात की है, वह पूर्ववर्ती पृष्ठों में निरुपित कालों जैसी नहीं है, जहां एक-एक काल कई-कई हजार वर्षों का है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'वयं रक्षाम:' के प्रारंभिक परिच्छेदों में जिन अलग-अलग नृवंशों की बात की है, उसका समय सात हजार साल पहले का बताया है। राम-रावण का युग त्रेता कहलाता है। उसके पूर्व कृतयुग या सतयुग है। सतयुग का कुल समय शास्त्रीजी ने तेरह सौ वर्षों का बताया है। ईसा से कोई चार हजार वर्ष पूर्व (अर्थात् छः हजार साल पूर्व) भारतवर्ष के मूल पुरुष स्ययंभु मनु उत्पन्न हुए। उनके बाद दूसरे पाँच मनु हुए हैं। "इन छहों मनुओं के काल का समय—जो लगभग तेरह सौ वर्षो का है—सतयुग के नाम से प्रसिद्ध है"।[20] छायावाद के कवि जयशंकर प्रसाद ने अपने कामायनी काव्य में जिस प्रलय की बात कही है, वह इसी मन्वंतर काल में हुई थी।[21]

पूर्ववर्ती अध्याय में (पंचम् अध्याय में) हमने डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार के अभिमत का उल्लेख किया है। डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार महाभारत के युद्ध की तिथि लगभग 1424 ई.पू. की मानते हैं। इस

तरह से देखा जाए तो महाभारत के युद्ध को 3435 वर्ष का समय हुआ है।[22] त्रेता को भी सतयुग की तरह बारह-सौ तेरह-सौ वर्ष का माना जाए, और राम के समय को आधा त्रेता मान लिया जाए, तो राम का समय, राम-रावण युद्ध का समय लगभग बयालीस सौ वर्ष पूर्व उठरता है। अर्थात् लगभग 2200 ई.पू. का समय उठरता है। यह इतिहासकार एवं पौराणिक उपन्यासकार का दृष्टिबिन्दु है, अन्यथा पुराणकारों की समय-विभावना, काल-विभावना, तो बड़ी अजब-गजब की रही है। कट्टरवादी लोगों का दृष्टिबिन्दु भी लगभग पुराणकारों जैसा ही है। इसे विचित्रता और विडम्बना ही कहना चाहिए कि ये लोग यथासंभव अपनी संस्कृति और इतिहास को अधिक पीछे ले जाना चाहते हैं।

सामजिक व्यवस्था:

किसी भी देश या राष्ट्र की किसी भी समय की समाज-व्यवस्था का आधार तत्कालीन संस्कृति, सभ्यता तथा नैतिक मान्यताओं पर निर्भर होता है। यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने उपन्यास 'वयं रक्षाम:' में विभिन्न नृवंशों तथा उनकी संस्कृतियों का निरूपण यथासंभव ऐतिहासिक दृष्टि से किया है। 'वयं रक्षाम:' के प्रारंभिक परिच्छेदों में जिन नृवंशों का इतिहास या वंशावली दी गई है, उसका समय लगभग सात हजार वर्ष पूर्व का है। उस समय की समाज-व्यवस्था के संदर्भ में उसी उपन्यास में यह निर्दिष्ट हुआ है:

"प्रसिद्ध है कि यमी ने यम से विवाह करने की याचना की थी, जिसे यम ने अस्वीकार कर दिया था। दैत्य-कुल में भाई-बहन, माता-पुत्र में विवाह का प्रचलन था। देवकुल में भी वैयक्तिक विवाह का रिवाज न था। सारी जीवन-प्रणाली सामूहिक थी। सम्पत्ति भी सामूहिक थी। इसलिए यौन-सम्बन्ध भी यौथ थे। यह वास्तव में वेश्यावृत्ति न थी, क्योंकि शरीर का क्रेता और विक्रता कोई न था। यौन-सम्बन्ध पर कोई रोक-टोक न थी। जहां पुरुष के लिए भगिनी-गमन और मातृगमन भी कोई दोषपूर्ण न माना जाता था, वहां स्त्री के लिए भातृगमन और पितृगमन में भी कोई दोष न था। उस युग

में एक गर्भ से उत्पन्न होने वाली संतान अपने को भाई-बहन करके न जान सकती थीं। औरस से उत्पन भाई-बहनों का आपस में किसी प्रकार का यौन-सम्बन्ध नहीं हो सकता था, पर यह कोई जान ही न सकता था कि कौन किस औरस से उत्पन्न है। ... यही कारण था कि संतान का परिचय मां के नाम अथवा कुल से होता था। उस युग में देवों और दैत्यों में कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति का पिता हो सकता था। यों कहना चाहिए कि एक ग्राम के सब लोग पिता कहे जा सकते थे। भगिनी-गमन बाद तक भी जायज रहा"।[23]

राम-लक्ष्मण के समय तक आर्यों और राक्षसों में विवाह-प्रथा रूढ़ हो गई थी, परंतु बहुत से दैत्य-कुलों में अभी उसका प्रचलन नहीं हुआ था। तभी तो 'वयं रक्षाम:' की दैत्यबाला विश्रवण रावण से कहती है—"तो तू प्यार कर, अनुमति देती हूं। किन्तु तू ही पहला पुरुष नहीं है, तुझसे पहले बहुत आ चुके हैं, तू ही अंतिम नहीं है, और अनेक आयेंगे"।[24]

दैत्यबाला के प्रत्युत्तर में रावण जो कहता है वह भी अत्यन्त सूचक है: "नहीं, अब और नहीं आयेंगे। अब जो तुझे छुएगा उसी के साथ तेरा भी मैं तत्क्षण वध करूंगा। मेरी यह मर्यादा है कि एक स्त्री एक ही पुरुष की अनुबन्धित हो"।[25] इसीके संदर्भ में वह आगे कहता है—"यह मेरी संस्कृति है—रक्ष-संस्कृति। कुमारी का हरण हमारे लिए वैध है—हरण की हुई कुमारियां हमारी अनुबंधित होती है"।[26]

उपर्युक्त संवाद में जो 'अनुबंधित' शब्द है, वह ध्यानार्ह है। स्त्री-पुरुष में अनुबंध होता था। तब तक कुछ समाजों में 'विवाह' एक संस्कार के रूप में स्थापित नहीं हुआ था। 'विवाह' की विस्तृत चर्चा परवर्ती पृष्ठों में हम करने जा रहे हैं, अत: यहां समाज-व्यवस्था के अन्य कतिपय पहलुओं पर विचार किया जाएगा।

रामायण-काल तक आर्यावर्त में वर्ण-व्यवस्था दृढ़मूल हो गई थी। समाज चार वर्णों में विभक्त था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। शायद शूरु में यह व्यवस्था कर्मणा रही हो, परतु बाद में तो यह जन्मना ही हो गई थी। गीता में भले गुण-कर्म विभाग की बात

कही गई हो, परतु रामायण के समय में ही वर्ण-व्यवस्था अधिक दृढ़मूल हो गई थी और ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण और क्षत्रिय का पुत्र क्षत्रिय यह विचारधारा अधिक प्रबल हो गई थी। ब्राह्मण का कार्य पढ़ना-पढ़ाना और पौरोहित्य था, क्षत्रिय को देश-समाज की रक्षा करनी थी, वैश्य का कार्य व्यापार था और शूद्र को उक्त तीन वर्णों की सेवा करनी थी। कर्म या व्यवसाय के हिसाब से यह विभाजन होता तब तो फ़िर भी गनीमत होती, परंतु उसमें संस्तरण-विधि (Hierarchy) के समावेश से मानव-मूल्यों पर और भी कुठाराघात हुआ। वरियता या श्रेष्ठता के इस क्रम में ब्राह्मण सबसे ऊपर था, और शूद्र सबसे नीचे। समाज के विभिन्न कार्यों को अंजाम देनेवाला कारीगर वर्ग (Artisans) को शूद्रों में शामिल किया गया। इसे एक विडम्बना ही समझना या कहना चाहिए कि यही समाज का उत्पादक वर्ग था। समाज के उत्पादक वर्ग को ही सबसे नीचे रखा गया। और फ़िर व्यवसाय-चयन की स्वतंत्रता भी इनसे छीन ली गई।

वस्तुत: राम-रावण युद्ध दो संस्कृतियों का युद्ध है। राम आर्य-संस्कृति के प्रस्तोता है, रावण रक्ष-संस्कृति का। आर्यों में यह वर्ण-विभाजन था। ऊंच-नीच का भेद भी था और अतएव निम्न वर्ण के लोगों का उच्च-वर्णों के लोगों द्वारा शोषण भी होता था। अत: रावण उसका विरोधी था। अपने ज्येष्ठ भ्राता कुबेर से एक स्थान पर वह कहता है—"आप ज्येष्ठ हैं, पूज्य हैं, परन्तु हम आपसे सहमत नहीं है। खाना-पीना, मौज करना जीवन का ध्रुव ध्येय नहीं। मेरा नारा है—"वयं रक्षाम:'। हम प्रजापति के वंशधर हैं। एक ही पिता कश्यप से भिन्न-भिन्न माताओं से दैत्य, दानव, नाग, असुर और आदित्यों की उत्पत्ति हुई। हम दायाद बान्धव है। मैं नहीं चाहता कि आदित्य, देव, दैत्य, दानव, नाग, असुर, अपनी पृथक जाति बनाएं, उनमें संघर्ष हो, युद्ध हो। मैं विश्व में नृजाति की एक ही संस्कृति के अधीन करना चाहता हूं और वह संस्कृति मेरी स्थापित की हुई रक्ष-संस्कृति है। हम कहते हैं—'वयं रक्षाम:' और हमारी संयुक्त जाति है—'राक्षस' "।[27]

डॉ. भगवान सिंह के उपन्यास 'अपने अपने राम' में जो शम्बूक-प्रसंग वर्णित है उसमें तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था पर काफ़ी प्रहार किए गए हैं। वसिष्ठ के एक प्रश्न के उत्तर में शम्बूक कहता है— "तात्पर्य बहुत स्पष्ट है, महर्षि। जन्म से धर्म का निर्धारण नहीं हो सकता। ब्राह्मण कुल मे जन्म लेने वाले सभी व्यक्तियों में ब्राह्मण बनने की योग्यता नहीं होती और वे शूद्र-वत आचरण करते हैं। कुछ वैश्यवत दिन-रात हानि-लाभ की ही सोचते हैं। कुछ क्षात्र धर्म अपना लेते हैं। ठीक यही बात क्षत्रियों और वैश्यों और शूद्रों पर भी घटित होती है। ऐसे शूद्र भी हो सकते हैं जो तेजस्वी हों और ब्रह्मत्व को प्राप्त कर सकें या संकट की घड़ी में देश और समाज की रक्षा कर सकें। अतः महाराज यदि यह मानते हैं कि सभी मनुष्य जन्म से शूद्र होते हैं और संस्कार से ही द्विज बनते हैं तो उनका यह विश्वास कि ऐसा संस्कार प्राप्त करने का सभी को अधिकार है, न तो धर्म विरुद्ध है, न वर्ण-विरुद्ध, न ही समाज-विरुद्ध। इसमें तो सभी का कल्याण है। यदि पूरे समाज के मेघावी व्यक्ति ब्राह्मण धर्म का पालन करें,यदि पूरे समाज के स्वस्थ और ओजस्वी व्यक्ति क्षात्र-धर्म अपनावें; यदि उत्पादन, वृद्धि, योग और क्षेम में अभिरूचि रखने वाले वैश्य धर्म का पालन करें और जो किसी भी दृष्टि से उत्कर्ष न प्राप्त कर सकें वे शूद्र धर्म का निर्वाह करें तो पूरे समाज की क्षमता और ओजस्विता का सर्वोत्तम उपयोग होगा और धर्म ही प्रधान रहेगा। यही धर्म की सच्ची स्थापना होगी और यही वर्ण-धर्म का सम्यक् निर्वाह होगा।"[28]

शम्बूक की बातें ध्यान से सुन रहे थे कि वसिष्ठ का एक शिष्य उनके कान में कुछ फ़ुसफ़ुसाता है, जिसे सुनकर महर्षि वसिष्ठ के चेहरे पर खुशी और प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ती है। वे शम्बूक को उनका नाम, जाति, गोत्र आदि पूछते हैं और शम्बूक के बताने पर भी कि वह शूद्र कुल में उत्पन्न हुआ है, वसिष्ठ की त्यौरियां चढ़ जाती है और वे कहते हैं—"तू शूद्र होकर मुझे धर्मोपदेश करने चला है? नीच। दुर्बुद्धि। तुझे पता नहीं यह ऋषि सभा है? पता नहीं यह ब्रह्म सभा है। यहां धर्मविदों और वेदविदों को आमंत्रित किया गया है।"[29]

अभी एक क्षण पहले तक जो ऋषि शम्बूक के तर्क पर मुग्धभाव से सिर हिला रहे थे, वे यह जानते ही कि वह शूद्र कुलोत्पन्न है, क्रोध से कांप रहे थे। उनका ब्राह्मणत्व एकाएक जग उठा था और अब वे उन्हीं तर्कों औरस विचारों से स्वयं को अपमानित समझ रहे थे। मौके का फ़ायदा उठाकर वसिष्ठ-पुत्र शक्ति कहने लगता है—"हमारे निमंत्रण में यह कहीं गर्भित न था कि ऋषिगण अपने शिष्यों के कुल शील का विचार किए बिना ही..."[30] शक्ति का यह संकेत अगस्त्य की और था। अतः अपना और अपने गुरु का अनादर होते देख शम्बूक उबल पड़ता है—

"किस कुल-शील की बात करते हो वासिष्ठ (वसिष्ठ-पुत्र)। मुझे यह तो पता है कि मैं शूद्र जात हूं, पर यहां उपस्थित ऋषियों में बहुतों को तो अपने पितृत्व तक का ज्ञान न होगा।"[31] शम्बूक का इशारा शक्ति के पिता महर्षि वसिष्ठ को लेकर था। वसिष्ठ का एक नाम मैत्रावरुण भी है, क्योंकि उनके सम्बन्ध में निश्चयतः नहीं कहा जा सकता था कि वे मित्र (सूर्य) के पुत्र थे कि वरुण के, क्योंकि इनकी माता उर्दशी उन दिनों वरुण और सूर्य दोनों की सेवा में थी। अतः यह निश्चित नहीं था कि वे किसके औरस है? सूर्य के या वरुण के?[32]

महाभारत के एकलव्य का प्रसंग भी सबको ज्ञात है। द्रोणाचार्य उसे शिक्षा देने से इन्कार कर देते है क्योंकि वह निषादराज का पुत्र था और निषादों की गणना शूद्रों में ही की जाती थी। परशुराम कर्ण को शिक्षा तो देते हैं, पर इसके लिए कर्ण को अपनी जाति छिपानी पड़ी थी और इस रहस्य के प्रकट हो जाने पर गुरु ने उसे अभिशाप भी दिया था कि निर्णायक क्षणों में उसे यह विद्या काम न आयेगी, वह उसे भूल जाएगा। डॉ. नरेन्द्र कोहली की महाभारत-शृंखला के उपन्यास, मनु शर्मा के 'कर्ण की आत्मकथा' नामक उपन्यास तथा डॉ. बच्चन सिंह के 'सूतोवा सूतपुत्रो वा' उपन्यास में अनेक स्थानों पर कर्ण महान धनुर्धर तथा योद्धा होने के बावजूद उसके अपमान होते रहते हैं, क्योंकि उस पर 'सूतपुत्र' होने का कलंक लगा हुआ था। दुर्योधन और उसके भाइयों को छोड़कर तमाम लोग

उसे बार-बार सूतपुत्र कहकर लांछित करते रहते हैं। रंगभूमि प्रसंग में द्रोणाचार्य और कृपाचार्य तो उसे अपमानित करते ही हैं, मत्स्य-वेधन प्रसंग में द्रौपदी भी सूतपुत्र कहकर उसे अपमानित करती है और आश्चर्य इस बात का है कि धर्म-राज्य की स्थापना की बारंबार घोषणा करने वाले और गीता-प्रसंग में 'गुण-कर्म-विभाग' की बात करने वाले कृष्ण के इशारों पर द्रौपदी ऐसा कहती है। भीष्म द्वारा यह कहना कि जब तक वे रणभूमि पर रहेंगे उनके नेतृत्व में कर्ण नहीं लड़ेगा, इससे ज्यादा अपमान और क्या हो सकता है। 'सूतोवा सूतपुत्रो वा' में शल्य युद्धभूमि पर कर्ण का तेजोवध करने के लिए कितनी ही बार कर्ण को उसकी शूद्र जाति के कारण अपमानित करता है।[33] और तो और एक बार उसकी पत्नी माला तक कर्ण को सुना जाती है – 'बना हुआ राजा एक अभिनेता होता है। अपनी नाटकीय भूषा उतार देने के बाद फिर रंक का रंक।"[34]

जो लोग यह तर्क देते हैं कि व्यक्ति अपने कर्म को लेकर अपने वर्ण को बदल सकता है, एक भ्रांति मात्र है। डॉ. नरेन्द्र कोहली के उपन्यास 'धर्म' में अक्षय नामक एक लेपक के संदर्भ में वर्ण-व्यवस्था पर विचार किया गया है। अक्षय लेपक था। सामान्य कारीगर, इस दृष्टि से उसकी गणना शूद्रों में हो सकती है, परंतु अपनी योग्यता, लगन व काबिलयत से वह वास्तुकार हो जाता है। वास्तुकार की गणना ब्राह्मण के अंतर्गत होती है, परंतु लेपक जन्मना ब्राह्मण नहीं है, वह कर्मणा ब्राह्मण है; अब जैसा कि ये लोग, 'गुण-कर्म-विभाग' की ऊंची-ऊची बाते करने वाले लोग, कहते है, अक्षय की गणना ब्राह्मण में करनी चाहिए। इस संदर्भ में धौम्य ऋषि की बात विचारणीय प्रतीत होती है। अक्षय को एक श्रेष्ठी कन्या से प्रेम हो गया था। वह कन्या भी उसे प्रेम करती थी। अतः ये दोनों विवाह करना चाहते हैं। अब अक्षय कर्मणा तो ब्राह्मण हो गया है, अतः श्रेष्ठी-कन्या से उसका विवाह अनुलोम विवाह होगा, जो उस समय शास्त्र-सम्मत माना जाता था। ऊंची जाति का व्यक्ति अपने से नीची जाति की कन्या से विवाह कर सकता है या उससे यौन-सम्बन्ध भी रख सकता है, परंतु नीची जाति का व्यक्ति अपने से ऊंची जाति की

कन्या से विवाह नहीं कर सकता। ऐसे विवाह को प्रतिलोम विवाह कहते थे और शास्त्र, अतएव धर्म, इस प्रकार के विवाह की अनुमति नहीं देता। अब अगरचे अक्षय की जन्मना-जाति लेपक के हिसाब से देखें तो विवाह प्रतिलोम होगा। अतः धौम्य ऋषि अक्षय को परामर्श देते हैं कि वह श्रेष्ठी-कन्या को अपने अतीत से अवगत करें। ऐसी अवस्था में श्रेष्ठी कन्या विवाह के लिए मना भी कर सकती है। यदि 'कर्मणा' वाली बात इतनी सत्य होती तो ऋषि ऐसी बात न करते। अभिप्राय यह कि आदर्श के स्तर पर उसे मान्यता थी, पर व्यवहार में उसे उतनी मान्यता नहीं मिली थी। बात घूम-फिरकर वहीं आ जाती है कि सिद्धान्तों की और आदर्शों की बातें भले हम बड़ी-बड़ी कर लें, व्यवहार के स्तर पर वे सब बातें खोखली सिद्ध होती हैं।[35]

'वर्ण-व्यवस्था' की तरह उस काल में 'आश्रम-व्यवस्था' भी थी। जीवन को सौवर्षो में विभक्त किया गया था। प्रथम पचीस वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम, पचीस से पचास गृहस्थाश्रम, पचास से पचहत्तर वानप्रस्थाश्रम और उसके बाद सैन्यस्ताश्रम। परंतु उपन्यासों में हम देखते हैं कि जितना पालन 'वर्ण-व्यवस्था' का होता था। और जैसे उसको धर्म का ही एक अंग मान लिया गया था; ठीक वही स्थिति 'आश्रम-व्यवस्था' की नहीं थी। बहुत कम लोग उसका पालन करते थे। रामायण के दशरथ राम को राज्य-सत्ता सौंपना चाहते थे, परंतु डॉ. नरेन्द्र कोहली ने बताया है कि उसके पीछे भयाक्रान्त स्थिति अधिक कारणभूत है। वृद्धावस्था के कारण कैकेयी अब आकर्षण की वस्तु कम, भय की वस्तु ज्यादा हो गई थी। दशरथ को अब आशंका रहने लगी थी कि कैंकेयी या उसका भाई युद्धाजित या पुत्र भरत, इनमें से कोई भी इनको बन्दी बनाकर राज्य-सत्ता पर काबिज हो सकते थे। राम के आदर्शों पर दशरथ को अधिक विश्वास था। अतः राम के राजा होने में ही वे अपनी खैर मनाते थे।[36]

कारण कोई भी रहे हों, भीष्म पितामह भी, न वानप्रस्थाश्रम लेते हैं न सैन्यस्ताश्रम। हां, 'बंधन' उपन्यास के अंत में माताओं का आश्रमों में जाना डॉ. कोहली ने अवश्य बताया है। व्यास इस उपन्यास के अंत में माता सत्यवती को अपने साथ आश्रम

में ले जाते हैं। वस्तुतः यहां भी सत्यवती अपने मन से हस्तिनापुर को छोड़ नहीं रही थी, बल्कि हठात् या बलात् व्यास ही अपनी मां को ले जा रहे थे। हां, अंबिका और अंबालिका अवश्य अपने मन से जा रही थीं, क्योंकि हस्तिनापुर में उन्होंने अवज्ञा और उपेक्षा के अतिरिक्त और क्या देखा था। कहने भर की राजमाता थीं। सत्ता तो सत्यवती या भीष्म के पास ही थी।[37]

द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कृष्ण कोई भी स्वेच्छा से वानप्रस्थाश्रम या सैन्यस्ताश्रम को अंगीकृत नहीं करता। व्याध के हाथों कृष्ण की मृत्यु होती है तब उनकी अवस्था लगभग सवा सौ वर्ष की थी।[38] अभिप्राय यह कि जितनी कट्टरता वर्ण को लेकर थी, उतनी कट्टरता आश्रम को लेकर नहीं थी। वस्तुतः हमारे शास्त्रों में सारे कायदे और नीति-नियम ही ऐसे बनाए गए हैं कि लाभ ऊंची जाति के लोगों को ही हो। 'अनुलोम-विवाह' की छूट इसलिए थी कि उससे उनके स्वैराचार पर कोई बाधा नहीं आती थी। 'अपने अपने राम' का शम्बूक उपयुक्त ही कहता है – "अपनी स्वच्छंदता के कारण किसी भी वर्ण और जाति को तो छोड़ते नहीं आप लोग..."[39]

सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत ही 'स्त्रियों की स्थिति' का मुद्दा भी आ सकता है। यदि हम प्राचीन समय से इधर आते जाते हैं तो क्रमशः स्त्रियों के अधिकार अधिकाधिक बाधित होते गए हैं। पहले देवों, दैत्यों, दानवों, नागों आदि नृवंशों में मातृसत्ताक समाज का चलन था। तब माताओं को, स्त्रियों को अधिक अधिकार व मान-सम्माम था। पुत्र का परिचय उसकी माता या उसके गोत्र से देखा-परखा जाता था। परंतु बाद में मनु ने जो व्यवस्था दी उसके अंतर्गत उसके अधिकार कटते गये। नारी या स्त्री, व्यक्ति न रहकर, वस्तु में परिवर्तित हो गई। जिस प्रकार कोई वस्तु पर उसके मालिक का अधिकार होता है, ठीक उसी तरह स्त्री पर भी उसके मालिक का, अर्थात् उसके पति का अधिकार होता था। स्त्री के संदर्भ में मनु ने जो व्यवस्था दी थी उसे प्रकट करने वाला यह श्लोक बहुउद्धृत है –

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्रयमर्हति॥"[40]

अर्थात् कुमारी अवस्था में स्त्री की रक्षा पिता करता है, युवावस्था में उसकी रक्षा उसका पति करता है और वृद्धावस्था में उसकी रक्षा या देखभाल उसका पुत्र करता है, परंतु किसी भी स्थिति में स्त्री स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है। जिस प्रकार मनु ने वर्ण-व्यवस्था देकर निम्न जातियों के मानवीय अधिकारों को बाधित करते हुए उन पर कई-कई प्रकार की निर्योग्यताएं (Disabilities) थोपी है, ठीक उसी तरह उसने स्त्रियों के मानवीय अधिकारों पर भी कातर चलाई है। हमारे शास्त्रों में अनेक स्थानों पर 'शूद्रा च नारी' का ठप्पा लगा हुआ है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने पौराणिक उपन्यास 'वयं रक्षामः' में स्त्रियों की स्थिति पर यथेष्ठ प्रकाश डाला हैः "जब सूर्यपुत्र मनु और उनके दामाद बुध ने अपने पैतृक राजवंशों की स्थापना कर ली और सूर्यमंड्ल और चन्द्रमंडल दोनों का भलीभांति विस्तार हो गया, तब उत्तर भारत आर्यावर्त के नाम से विख्यात हो गया तथा इस आर्यावर्त की समृद्धि सम्पूर्ण भारत से बढ़-चढ़कर हो गयी। इन आर्यों में अनेक सांस्कृतिक नवीन स्थापनाएं हुई। प्रथम तो यह कि इन दोनों ही कुलों ने अब तक चली आती हुई मातृसंज्ञाक वंश-परंपरा (Matriarch Society) को त्यागकर पितृमूलक वंश-परंपरा (Patriarch Society) स्थापित की। कुल-परंपरा को पितृमूलक निश्चित करने में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक परिवर्तन यह हुआ कि आर्यों में विवाह-मर्यादा दृढ़बद्धमूल हो गई और स्त्रियों के लिए पुरुष 'पति' या 'स्वामी' हो गये। उनके शरीर और जीवन की सम्पूर्ण सत्ता पर उसका अखण्ड एवं सर्वतंत्र अधिकार हो गया। यहां तक इस मर्यादा का रुप बना कि यदि वीर्य किसी अन्य पुरुष का भी अनुदान लिया हो तो भी संतति का पिता उस स्त्री का वह 'पति' ही माना जाएगा, जिससे उसका विवाह हो चुका है। अविवाहित स्त्रियों का पिता भी वही पति होगा। बहुत-से ऋषियों ने तो वीर्यदान अपना एक पेशा ही बना लिया, जिनमें उल्लेखनीय वेदर्षि दीर्धतमा थे। वसिष्ठ और दूसरे वरिष्ठ ऋषियों ने भी अन्य राजाओं की पत्नियों को वीर्यदान दिया। ऐसी सभी सन्तानें न माता की मानी गई, न वीर्यदाता पुरुष की। प्रत्युत

वे उस पुरुष की सन्तानें और उसी कुल-गोत्र को चलाने वाली प्रसिद्ध हुई, जो उनकी माता का विवाहित पति एवं स्वामी था। इससे आर्य जाति को यह लाभ तो अवश्य हुआ कि वह एक संगठित जाति हो गई, परन्तु इससे एक नयी और महत्वपूर्ण बात यह उत्पन्न हो गई कि उनकी राज्य-संपत्ति आदि सब वैयक्तिक होती गई और देखते ही देखते मानवों और ऐलों के महाराज्यों का विस्तार हो गया।"[41]

इससे स्त्री पुरुष की संपत्ति का एक अंग हो गयी। बल्कि एक ऐसा विचार भी पनपा कि पुरुष जितना ही ज्यादा शक्तिशाली (सत्ता और संपत्ति में) होगा, उसकी उतनी ही अधिक पत्नियां होती थीं। इस प्रकार 'बहुपत्नीत्व' की परंपरा शुरु हुई जिससे स्त्रियों के मान-सम्मान पर और अधिक चोट पहुंची। सपत्नियों (सौतों) के अस्तित्व के कारण स्त्रियां अनेक प्रकार के मानसिक दबावों के तहत जीने के लिए लाचार हो गईं। इसीलिए तो 'सौत' शब्द का प्रयोग स्त्रियों में गाली के रूप में होता है। इस संदर्भ में 'वयं रक्षामः' में कहा गया है –

"बहुपत्नीत्व की प्रथा भी इसी कारण चली। पति को अनेक स्त्रियों से ब्याह करने के अधिकार प्राप्त हो गए, पर पत्नी को नहीं। विवाह के अतिरिक्त आर्यलोग दासियां भी रखते थे। इस समय आर्य राजाओं के अंतःपुर में चार प्रकार की पत्नियां रहती थीं, एक महिषी – मुख्य महारानी – जिसे राजा के साथ यज्ञ में सम्मिलित होने का अधिकार था। दूसरी पतिव्रता – जिस पर पति का प्रेम कम हो जाता था या जो बूढ़ी हो जाती थीं। तीसरी वाग्वृता – जो मुख्य प्रेमिका होती थीं। चौथी पालावली – जो प्रायः मंत्री की कन्या होती थी। अपना अधिकार बनाए रखने तथा राजा के भीतरी भेद लेने के लिए प्रायः मंत्रिगण अपनी कन्या राजा ही को दे देते थे।"[42]

'अपने अपने राम' में वसिष्ठ-पत्नी अरुन्धती की यही व्यथा है। उपन्यास में एक स्थान पर वसिष्ठ मारे भय के यह कहते हैं कि उन्हें उनकी (पत्नी की) चिन्ता है। उस समय ऋषि-पत्नी की जो व्यंग्योक्ति है वह संक्षेप में बहुत कुछ कह जाती है – "यदि इतनी ही चिन्ता तब की होती, जब इसकी उम्र थी, तो मेरा जीवन सार्थक हो

गया होता।"43 यह एक वाक्य बहुत कुछ कह जाता है। उसके बाद की लेखकीय टिप्पणी भी वसिष्ठ के कामुक चरित्र पर प्रकाश डालती है – "सच तो, कितने स्वच्छंद थे वसिष्ठ। उनको दान में कुमारी दासियां ग्रहण करते समय यह चिन्ता ही नहीं होती थी कि उनकी एक पत्नी भी है। इस अस्वस्थता में, और इस अवस्था में भी, इस व्यंग्य से उनका चेहरा लाल हो गया। झेंप मिटाने के लिए कहा, बूढ़ी हो जाने पर भी स्त्रियों की तृष्णा नहीं जाती।"44

यहां स्पष्टतया दिखता है कि ऋषि-पत्नी को अपने युवा पति की ओर से कितनी मानसिक यंत्रणा मिली होगी। यह भी एक 'मिथ' ही है कि वसिष्ठ अपनी पत्नी को बहुत चाहते थे, जिससे सप्तर्षि में वसिष्ठ के साथ अरुन्धती की छोटी तारिका भी है। वसिष्ठ जैसे ऋषि क्यों रात-दिन यज्ञ कराने के चक्कर में रहते थे, यह भी इससे स्पष्ट हुआ है, क्योंकि उससे उनकी वासना तुष्टि होती थी।

पितृमूलक वंश-परंपरा जहां आर्य-पुरुषों के हक में थी, वहां स्त्रियों के लिए वह कितनी घातक और खतरनाक थी, उसका निरूपण भी 'वयं रक्षामः' उपन्यास में लेखक ने किया है – "परन्तु इससे स्त्रियों के अधिकारों का खात्मा हो गया। पत्नी का अपना कुल-गोत्र कुछ भी न रहा। पितृमूलक वंश-परंपरा में पिता का कुल-गोत्र कुछ भी न रहा। पितृमूलक वंश-परंपरा में पिता का कुल-गोत्र केवल पुत्र को ही मिलता था – पुत्री को नहीं। इसका अभिप्राय यह कि पुत्री को पिता की संतान ही नहीं गिना गया। वह पिता के कुल-गोत्र से बहिर्गत एक विच्छिन्न वस्तु मान ली गई; जो वयस्क होने पर किसी पुरुष को उसकी पत्नी बनने के लिए दे दी जाती थी। उसे न पिता का कुल-गोत्र मिलता था, न पति का। इस प्रकार से आर्यों की वंश-परंपरा में स्त्री मात्र पति के लिए संतान उत्पन्न करने के लिए एक जीवित क्षेत्र थी। इस विवाह मर्यादा में दाम्पत्य-प्रेम, समानता आदि के कुछ भी भाव न थे। न विवाह का उद्देश्य नर-नारी की नैसर्गिक कामेषणा की पूर्ति था, न यह अन्य शारीरिक और भौतिक एषणाओं पर आधारित था, उसका उद्देश्य अपने 'पति' के लिए – जो वास्तव

में उसका स्वामी था – साथी, मित्र या जीवन-संगी बनना नहीं – सन्तान उत्पन्न करना था।"[45]

इस पितृमूलक परंपरा के कारण ही आज भी हमारे समाज में लड़के की तुलना में लड़की को कम महत्व दिया जाता है, बल्कि कई बार तो उसके जन्म पर मातम मनाया जाता है। श्राद्ध-कर्म, पिण्डदान इत्यादि पुत्र ही कर सकता है, अतः पुत्र प्राप्त करना ही वैवाहिक जीवन का एक लक्ष्य हो गया। आज भी हमारे यहां कई ऐसी जातियां हैं जहां यदि किसी स्त्री के कन्याएं ही कन्याएं होती हैं तो उसे बांझ ही कहा जाता है, अन्यथा संतान-उत्पत्ति के बाद कोई भी स्त्री बांझ नहीं रहती है। परंतु कन्या का होना न होना बराबर समझा जाता है, क्योंकि पितृमूलक समाज में वंश पुत्र से ही चलता है, पुत्री से नहीं। अग्नि-संस्कार भी पुत्र ही देते हैं। अब कहीं छिटपुट ऐसी घटनाएं सुनने में आती हैं कि किसी पुत्री ने अपने माता या पिता का अग्नि-संस्कार किया, पर ये अपवाद है, नियम नहीं।

जिस प्रकार जमीन पर उसके मालिक का अधिकार होता है, ठीक उसी प्रकार स्त्री पर उसके अधिकार को माना गया। फलतः 'स्त्री' को उसके पति का 'क्षेत्र' कहा गया। जैसे खेत पर हल कोई भी चलावे, उत्पादन पर अधिकार उस 'खेत' के मालिक का ही होता है; ठीक उसी तरह किसी पुरुष में संतान उत्पन्न करने की शक्ति के न होने पर, दूसरे पुरुष से संतान उत्पत्ति की व्यवस्था की गई थी। उसमें संतान पर अधिकार उसके 'क्षेत्र-मालिक' का ही माना जाता था। ध्यान रहे 'खेत' शब्द की व्युत्पत्ति भी क्षेत्र से ही हुई है।

कहने का कहा जाता है कि स्त्री को अपने पति को चुनने का अधिकार था, पर उच्च वर्णों में – ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य – माता-पिता अपने अपने स्वार्थों के लिए, 'कन्या' का 'दान' ही करते थे। ध्यान रहे, दान चीज-वस्तु का किया जाता है। कन्या का भी दान होता था क्योंकि वह भी चीज-वस्तु ही थी। रामायण की कैकेयी महाभारत की गांधारी का विवाह उनके-उनके पिताओं ने अपने-अपने राजनीतिक हितों के लिए ही किया था। अन्यथा कोई भी सुंदर युवती – कहना न होगा कि ये दोनों अपने-अपने समय की सर्वश्रेष्ठ सुंदरियां

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

थीं – अपने पिता की उम्र के व्यक्ति और जन्मांध व्यक्ति के साथ राज़ी-खुशी विवाह तो नहीं कर सकती थी। स्वयंवरों की प्रथा थी किन्तु वहां भी कई बार कन्या को 'वीर्यशुल्का' घोषित करके चयन के अधिकार को बाधित कर दिया जाता था, क्योंकि उसके लिए पूर्व-निर्धारित प्रकार का पराक्रम करने वाले को वह कन्या दी जाती थी।

हालांकि पितृमूलक समाजों में उच्चवर्णीय स्त्रियों की स्थिति खास अच्छी नहीं थी, परंतु वहां भी पूर्व व पश्चिम के आर्यकुलों में स्थिति में थोड़ा अंतर अवश्य था। रघुवंशियों में स्त्रियों को किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं दी जाती थी, जबकि पंजाब (कैकेयी प्रदेश) के आनव आर्य-कुलों में स्त्रियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। कैकेयी इसी आनव कुल की थी। उसके संदर्भ में कहा गया है – "कैकेयी मानवती, सुंदरी, गरिमामय और ठसकदार रानी थी। बड़े राजा की बेटी होने के कारण उसका मान भी बहुत था। सबसे छोटी, सुंदरी और गुणवती होने के कारण वार्धक्य में राजा उसे प्यार भी बहुत करते थे। उसका अपना अलग महल, नौकर-चाकर, दास-दासी थे। वह स्वतंत्र प्रकृति की स्त्री थी। युद्ध और आखेट में राजा के साथ जाती थी। यह वास्तव में कुछ तो पितृकुल का प्रभाव था और कुछ 'वृद्धस्य तरुणी भार्या' का मामला था।"[46]

आर्थिक-व्यवस्था :

आर्थिक दृष्टि से पौराणिक समाज दो वर्गों में विभक्त था – अमीर और गरीब। चारों वर्णों में यह स्थिति थी। ब्राह्मणों में जो पुरोहित वर्ग था, जो राज-घराणों से जुड़ा हुआ वर्ग था, उनकी आर्थिक स्थिति काफी समुन्नत होती थी। परंतु जो दूर-दराज के ग्रामीण विस्तारों में रहते थे और बच्चों को अक्षर-ज्ञान या अंक-ज्ञान तक की शिक्षा देते थे, उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उदाहरण के रूप में हम 'अभिज्ञान' के सुदामा तथा महाभारत के, हस्तिनापुर आने से पूर्व के – द्रोणाचार्य को ले सकते हैं। क्षत्रियों में जो राजा, महाराजा, सामंत वर्ग के लोग थे वे तो काफी समुन्नत अवस्था में होते थे, परंतु सैनिक-कर्मियों की स्थिति उतनी अच्छी नहीं होती थी। वही बात वैश्यों पर भी लागू होती थी। जो वैश्य राजा

महाराजाओं से जुड़े हुए थे, नगरों में थे, महाजन थे; उनकी स्थिति तो बहुत अच्छी होती थी। कई बार वे राजा-महाराजाओं की भी सहायता करते थे, किन्तु ग्रामीण क्षेत्र के छोटे व्यापारियों को हम खाते-पीते वर्ग में रख सकते हैं। शूद्रों में कारीगर वर्ग के लोग खाते-पीते थे, परंतु अस्पृश्यों की स्थिति तो बड़ी ही करुण थी।

आर्थिक-व्यवस्था में राज्यों की श्रेणियों पर भी विचार करना आवश्यक है। पौराणिक काल में पाँच प्रकार के राज्य होते थे – साम्राज्य, जिनमें अनेक अधीन, विजित तथा करद राज्य सम्मिलित होते थे। दशरथ, रावण, जरासंघ आदि के राज्य को हम इस श्रेणी में रख सकते हैं। ये बड़े समृद्ध राज्य होते थे। उनका ऐश्वर्य व जाहोजहाल विपुल होता था। दूसरे प्रकार के राज्य को भोज्य कहते थे, जो सम्राट द्वारा किसी भी नियुक्ति के रूप में प्रदान किया जाता था। उदाहरणतया महाभारत में कर्ण को दुर्योधन द्वारा जो अंगदेश का राज्य दिया गया था उसे हम इस कोटि में रख सकते हैं। उसमें शासक का केवल उसकी आय पर ही अधिकार रहता था। तीसरा प्रकार है – स्वराज्य, जो स्वतंत्र होता था। शत्रु द्वारा जीते हुए राज्य को वैराज्य कहा जाता था। पांचवां प्रकार था राज्य, जो साम्राज्य के अंतर्गत आता था। [47]

सांस्कृतिक परिवेश :

सांस्कृतिक परिवेश के अंतर्गत बहुत-सी बातें आती हैं, जिनका सम्बन्ध किसी देश या राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता से है, उनके विश्वासों, उनके मूल्यों आदि से है। यहां यह बात गौरतलब रहे कि इस सांस्कृतिक परिवेश की चर्चा हम आलोच्य उपन्यासों के संदर्भ में ही करेंगे। संभव है, कुछ बातों का समावेश इनमें न भी हो। हमारा विवेचन केवल पौराणिक उपन्यासों पर आधारित है। यहां बहुत संक्षेप में एक-एक करके उन पर विचार किया जायेगा।

(1) विवाह – संस्कार :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में निरूपित किया गया है कि सभ्यता के प्रारंभ में विवाह-संस्था का अस्तित्व नहीं था। उस समय समूह-जीवन

का अस्तित्व था। लोग विभिन्न समूहों या समुदायों में रहते थे। तब यौन-सम्बन्धों पर किसी प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं था। कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री से यौन-सम्बन्ध स्थापित कर सकता था। यहां तक कि भाई-बहनों में तथा पुत्रों-माताओं में भी यौन सम्बन्ध होते थे। कौन किसका औरस पुत्र है पता ही नहीं चलता था, परंतु बाद में इन यौन-संबंधों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से विवाह-संस्था का जन्म हुआ। उद्दालक नामक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने सर्वप्रथम विवाह-प्रथा का नियम बनाया। कहा गया है कि एक बार श्वेतकेतु अपने माता-पिता के पास बैठे थे। उसी समय एक ब्राह्मण वहां आया और उनकी मां का हाथ पकड़कर बोला, "चलो, हम लोग चलें।" श्वेतकेतु को इस अज्ञातकुलशील ब्राह्मण की इस अशिष्टता पर अत्यन्त क्रुद होते देख उद्दालक बोले, "वत्स, क्रुद मत होओ; स्त्रियां भी गाय की तरह आवरणहीना और स्वैराचारिणी होती है।" परंतु ऋषिपुत्र पिता के वाक्यों से शान्त नहीं हुए। वे और भी क्रुद होकर बोले, "मैं यह नियम बनाता हूं कि अब से मनुष्य समाज में स्त्री-पुरुष दोनों में से कोई भी यौन व्यापार में स्वच्छंदाचरण को प्रश्रय नहीं दे सकेगा। मेरा नियम उल्लंघन करने वाले को भ्रूणहत्या का पाप लगेगा। लेकिन जो नारी पुत्रोत्पादन के निमित्त पति का आदेश मिलने पर भी दूसरे पुरुष के साथ संभोग न करके आदेश का उल्लंघन करेगी, उसी पाप की भागिनी होगी।[48]

अभिप्राय यह कि उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने विवाह-संस्था को जन्म दिया। रामायण-महाभारत के काल में विवाह के आठ प्रकार प्रचलित थे –

1) ब्राह्म-विवाह : वर की विद्या, बुद्धि, वंश, कुल, गोत्र आदि के बारे में पता लगाकर सद्वंशज, सच्चरित्र वर को कन्या का पिता या संरक्षक यदि कन्या का सम्प्रदान करे तो उस विवाह को 'ब्राह्म-विवाह' कहा जाता है। आजकल की भाषा में उसे 'सेटल्ड मैरिज' कहा जाता है। दशरथ – कौशल्या, राम-सीता, लक्ष्मण-उर्मिला, रावण-मंदोदरी, रावण-चित्रांगदा, विदुर-पारंसवी, पांडवों के द्रौपदी के अतिरिक्त दूसरी पत्नियों से विवाह, दुर्योधन आदि के विवाह, जयद्रथ-

दुःशला विवाह, द्रोणाचार्य-कृपी विवाह आदि विवाहों को हम इस कोटि में रख सकते हैं। यहां माता-पिता तथा गुरुजनों की सम्मति से विवाह होता है।

2) दैव-विवाह : यज्ञ में वृत्त ऋत्विक को यदि कन्या दान दी जाय तो उस विवाह को दैव-विवाह कहते हैं। राजा दशरथ ने अपनी कन्या शान्ता को ऋष्यश्रृंग को दान में दी थी।[49]

3) आर्ष-विवाह : कन्या के शुल्क रूप में वर से दो गायें लेकर जहां कन्यादान किया जाता है, वहां उस विवाह को 'आर्ष-विवाह' कहा जाता है। गाधि राजा ने एक हजार घोड़े लेकर ऋचीक को अपनी पुत्री ब्याह दी थी।[50] महाभारत में कहा गया है कि मद्र देश में भी ऐसी प्रथा थी। भीष्म पांडु के लिए माद्री शुल्क चुकाकर ही लाए थे।[51] यह विवाह आजकल के 'दहेज' से उल्टा है। यहां वर पक्ष वाले कन्या-पक्ष को कन्या का शुल्क (दहेज) चुकाते हैं। बहुत-सी छोटी जातियों में आज भी यह प्रथा है।

4) प्राजापत्य-विवाह : वर को धन-संपत्ति से संतुष्ट करने के बाद यदि उसे कन्या का दान किया जाए तो ऐसे विवाह को प्राजापत्य विवाह कहा जाता है। यह आजकल के 'दहेज' के समान है। कैकेयी के विवाह में भी दशरथ को काफी संपत्ति दी गई थी। रावण ने जब-जब विवाह किए उसे अतुल संपत्ति प्राप्त हुई है।[52]

5) आसुर-विवाह : कन्यादाता को बहुत-सा धन देकर या कन्या के परिवार वालों को नाना प्रकार से प्रलोभित करके यदि कन्या ग्रहण की जाय, तो उसे 'आसुर-विवाह' कहा जाता है। आलोच्य उपन्यासों में इस प्रकार के विवाह का कोई उदाहरण मिलता नहीं है।

6) गांधर्व-विवाह : वर व कन्या के परस्पर प्रणय के फलस्वरूप जो विवाह सम्पादित हो, उसे 'गांधर्व विवाह' कहा जाता है। महाभारत पर आधारित उपन्यासों में इसके कई उदाहरण मिल जाते हैं। अर्जुन-उलूपी विवाह, अर्जुन-चित्रांगदा विवाह, अर्जुन-सुभद्रा विवाह, कृष्ण-रुक्मिणी विवाह, कृष्ण-सत्यभामा विवाह, उषा-अनिरुद्ध विवाह,

भीम-हिडम्बा विवाह आदि विवाहों को हम गांधर्व-विवाह की कोटि में रख सकते हैं। आजकल उसे 'लव-मैरिज़' कहा जाता है।

7) राक्षस-विवाह : कन्या-पक्ष के लोग कन्या देने के लिए असहमत हो, फिर भी उद्धत परिणेता, जबरदस्ती कन्या को उठा ले जाकर जबरन उसका विवाह करते हैं, तो उसे राक्षस विवाह कहा जाता है। यहां कन्या की मरजी भी नहीं होती है। कन्या रोती-बिलखती जाती है। जहां अपहरण करके विवाह होता है, वहां भी उसे राक्षस-विवाह कहा जाता है। महाभारत में भीष्म विचित्रवीर्य के लिए काशीराज की कन्याओं – अम्बा, अंबिका और अम्बालिका – का जो अपहरण करते हैं और फिर उनका विचित्रवीर्य से विवाह करवाया जाता है, उसे राक्षस-विवाह की कोटि में रखा जा सकता है। भीष्म जैसे महात्मा को माता के आदेश पर यह पाप-कर्म करना पड़ता है। रामायण में दशरथ –कैकेयी विवाह तथा गांधारी-धृतराष्ट्र विवाह को भी एक दृष्टि से राक्षस विवाह ही कहा जायेगा क्योंकि दोनों प्रसंगों में कन्या के पिताओं पर शक्ति-प्रदर्शन का दबाव होता है।

8) सुप्त अथवा प्रमत्त कन्या के साथ बलात्कापूर्वक रमण करने का नाम 'पैशाच-विवाह' है। रामायण का इन्द्र-अहल्या-प्रसंग इसका उदाहरण है।[53]

उपर्युक्त नाना प्रकार के विवाहों में ब्राह्म, दैव एवं प्राजापत्य ये तीन विवाह धर्मसम्मत माने गए हैं। आर्ष व असुर-विवाह में कन्याकर्ता वर-पक्ष से धन ग्रहण करते हैं, इसलिए ये दोनों विवाह धर्मसम्मत नहीं है। विशेषतः असुर-विवाह विशेष रूप से निंदनीय माना गया है। गान्धर्व एवं राक्षस विवाह उतने प्रशस्त न होते हुए भी क्षत्रियों के लिए उन्हें अधर्मकारक नहीं माना गया है। पैशाच विवाह सर्वथा निंदनीय व परित्याज्य माना गया है।[54]

जाति-विशेष के संदर्भ में इन विवाहों के संदर्भ में कहा गया है – 'ब्राह्म, दैव, आर्ष एवं प्राजापत्य ये चार विवाह ब्राह्मण के लिए प्रशस्त है। इन चार के उपरान्त गांधर्व एवं राक्षस विवाह क्षत्रियों के लिए प्रशस्त हैं। वैश्य और शूद्र के लिए 'असुर-विवाह भी निंदनीय

नहीं है। शास्त्रों में कहीं किसी भी वर्ण के लिए 'पैशाच-विवाह' का समर्थन नहीं है।"[55]

इनके अतिरिक्त महाभारत में अन्य दो विवाह के प्रकारों की चर्चा भी उपलब्ध होती है – अनुलोम-विवाह तथा प्रतिलोम विवाह। निम्न-वर्ण की कन्या जहां उच्च-वर्ण में जाती है उसे अनुलोम-विवाह कहा जाता है, और इसके विपरीत उच्चवर्ण की कन्या यदि नीच वर्ण में जाती है तो उसे प्रतिलोम विवाह कहा जाता है। प्रथम प्रकार का विवाह शास्त्र-सम्मत है और दूसरे प्रकार के विवाह का अनुमोदन शास्त्र नहीं करता।[56]

महाभारत में क्षत्रियों में मातुल-कन्या से विवाह की प्रथा प्रचलित थी। अभी भी भारत में कहीं-कहीं मातुल-कन्या से विवाह की प्रथा है। इस नियम के अनुसार अर्जुन ने सुभद्रा से, सहदेव ने मद्रराज कन्या से, शिशुपाल ने भद्रा से तथा परीक्षित ने उत्तर की कन्या इरावती से विवाह किया था।

उपर्युक्त प्रकारों के अलावा और भी दो विवाह-पद्धतियां मिलती हैं – बहुपत्नीत्व और बहुपतित्व। पितृमूलक समाज-व्यवस्था में बहुपत्नीत्व को सामान्य समझा जाता है, इसमें एक व्यक्ति की एकाधिक पत्नियां होती है। दशरथ की तीन रानियां थीं। इन पत्नियों के प्रकारों के संदर्भ में भी पूर्ववर्ती पृष्ठों में पर्याप्त निर्देश दिए गए हैं। पांडु के भी दो पत्नियां थीं – कुन्ती और माद्री। पांडवों के भी द्रौपदी के अतिरिक्त भी दूसरी पत्नियां थीं। महाभारत का अर्जुन अपने गांधर्व-विवाहों के लिए विख्यात है। कृष्ण की भी कई रानियां थीं। बहुपत्नीत्व के विपरीत बहुपतित्व प्रथा भी महाभारत में प्रचलित थी, इसमें एक स्त्री के कई-कई पति होते हैं। महाभारत की द्रौपदी इसका ज्वलंत उदाहरण है। महाभारतकालीन पांचालों में पहले यह प्रथा थी, परंतु बाद में उसे त्याग दिया गया था। इसीलिए द्रुपद द्रौपदी का विवाह पाँच पांडवों से कराने में असहमत थे परंतु बाद में कृष्ण, व्यास आदि के समझाने पर वे मान जाते हैं।

विवाह से जुड़ी एक और समस्या भी महाभारत में मिलती है, वह समस्या है परिवेदन की समस्या। सहोदर भाइयों में ज्येष्ठ के

अविवाहित रहते कनिष्ठ भाई विवाह नहीं कर सकता और यदि करता है तो वह पाप का भागी होता है और उसे इसके लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता है। युधिष्ठिर के अविवाहित रहते भीमसेन हिडम्बा से गांधर्व विवाह करता है। युधिष्ठिर व माता कुन्ती कामातुर हिडम्बा की कातर प्रार्थना को सुनकर विवाह की अनुमति देते हैं। इसके अतिरिक्त अनुबंध-विवाह या अस्थायी विवाह भी होते थे जिनमें स्त्री के पुत्रलाभ करने के बाद पति उसे छोड़ सकता था। अर्जुन-उलूपी, अर्जुन-चित्रांगदा तथा हिडम्बा-भीमसेन का विवाह इस कोटि में भी आता है।

(2) नियोग-विधि :

पितृमूलक समाजों में विवाह का एक मात्र लक्ष्य पुत्र-प्राप्ति का हुआ करता था। बहुपत्नीत्व भी इसी कारण आया था। एक पत्नी से पुत्र न हो तो, दूसरी-तीसरी पत्नी लायी जाती थी। परंतु उस पर भी पुत्र-प्राप्ति न हो तो नियोग-विधि का सहारा लिया जाता था। पति या गुरुजनों की अनुमति से ब्राह्मण या देवता वर्ग के किसी अज्ञात पुरुष को नियोग-हेतु नियुक्त किया जाता था। और उस नियुक्त पुरुष तथा पुत्राकांक्षिणी स्त्री के बीच समागम की व्यवस्था की जाती थी। गर्भाधान के उपरान्त उस नियुक्त पुरुष का उससे कोई रागात्मक संबंध नहीं रहता था, न ही उसका उस पुत्र पर कोई अधिकार होता था। पुत्र उसी का माना जाता था जिसकी वह पत्नी होती थी। महाभारत में धृतराष्ट्र, पांडु तथा विदुर का जन्म इसी नियोग-विधि से ही हुआ है। पांडवों का जन्म भी नियोग-विधि से ही हुआ है। इसे पूर्ववर्ती पृष्ठों में सविस्तृत एवं ससंदर्भ निरूपित किया गया है।

(3) पुत्रों के प्रकार :

उपर्युक्त विधि के प्रचलन के कारण विवाह से जो पुत्र प्राप्ति होती थी उसमें भी श्रेणी-विभाजन दृष्टिगोचर होता है। विवाहित दम्पति से जो पुत्र प्राप्त होता था उसे औरस पुत्र कहते थे। रावण, कुंभकर्ण, विभीषण, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कृष्ण, बलराम,

भीष्म, दुर्योधन, दुःशासन आदि इस कोटि में आते हैं। संक्षेप में जिनके जन्मदाता माता-पिता एक होते हैं, ऐसे पुत्रों को औरस पुत्र कहते हैं और उन्हें श्रेष्ठ माना जाता है। नियोगविधि से जिनका जन्म होता है, अर्थात् जिनके जन्मदाता-बीजदाता पिता अन्य होते हैं, ऐसे पुत्रों को क्षेत्रज-पुत्र कहते हैं। धृतराष्ट्र, पांडु, विदुर आदि के विधिवत् पिता तो विचित्रवीर्य थे, परन्तु उनका निधन हो गया था। अतः हस्तिनापुर के कुरु वंश को आगे बढ़ाने के लिए तथा राज्य के उत्तराधिकारी के लिए माता सत्यवती भीष्म को आदेश देती हैं कि वह अंबिका तथा अंबालिका से सम्बन्ध स्थापित करके हस्तिनापुर के लिए वारिस पैदा करें। परंतु भीष्म ने तो आजीवन अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा ली थी। अतः माता सत्यवती के कहने पर ही कृष्ण द्वैपायन व्यास को नियुक्त पुरुष के रूप में बुलाया जाता है। वे तीन बार आते हैं और क्रमशः अंबिका, अंबालिका तथा उनकी एक दासी से समागम करते हैं। जिससे क्रमशः धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर का जन्म होता है। अतः इनको क्षेत्रज पुत्र कहा जाता है। इनके बीजदाता पिता तो व्यास थे, किन्तु ये सम्राट विचित्रवीर्य के क्षेत्रों – अंबिका, अंबालिका तथा दासी – से उत्पन्न हुए।[57] आगे चलकर पांडु का विवाह कुन्ती और माद्री से होता है, परंतु उनका स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि वे अपनी रानियों के साथ समागम कर सके। हालांकि वहां महाकाव्य के रचयिता वेदव्यास ने किसी ऋषि के शाप का 'मिथ' जोड़ दिया है। अतः कुन्ती और माद्री दोनों पांडु के समझाने पर क्रमशः धर्म, वायु, इन्द्र तथा अश्विनीकुमारों से नियोग संपन्न कर क्रमशः युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव आदि पुत्रों को प्राप्त करते हैं। इनमें प्रथम तीन कुन्ती के और अंतिम दो माद्री के। ये सभी क्षेत्रज पुत्र हैं।[58] पुत्र का एक तीसरा प्रकार भी हमें महाभारत में मिलता है, वह है कानीन पुत्र। किसी अविवाहित कुमारी कन्या को किसी का गर्भ रह जाता है और उससे जो पुत्र होता है उसे कानीन पुत्र कहते हैं। व्यास और कर्ण क्रमशः सत्यवती और कुन्ती के कानीन पुत्र हैं। महाभारत काल में ऋषिसमाज में तो कानीन पुत्र को मान्यता प्राप्त थी, परंतु क्षत्रिय-समाज उसे मान्यता नहीं देता था। अतः सत्यवती पराशर के पुत्र व्यास को तो पिता अपने पास ले जाते

हैं, पर कुन्ती अपने कानीन पुत्र कर्ण को गंगा नदी में प्रवाहित कर देती है।

(4) यज्ञों के प्रकार :

आर्य-संस्कृति यज्ञ-प्रधान थी। वहां तरह-तरह के यज्ञ हुआ करते थे। इसके विपरीत रावण द्वारा स्थापित 'रक्ष-संस्कृति' यज्ञ-विरोधी।[59] यज्ञों से ब्राह्मणों का फायदा होता था, अतः वसिष्ठ जैसे ब्राह्मणवादी-वर्णव्यवस्थावादी ऋषि हमेशा किसी-न-किसी बहाने यज्ञ कराने का परामर्श देते रहते थे।[60] परंतु यज्ञों के कारण सामान्य निरीह प्रजा का शोषण होता था, राजकोष पर उसका प्रभाव पड़ता था,[61] जिससे अंततः बोझ प्रजा पर ही आता था, उससे जंगलों का नाश होता था।[62] अतः रावण इन यज्ञों का विरोध करता था, क्योंकि 'रक्ष-संस्कृति' का सूत्र था – 'वयं रक्षामः' – अर्थात् हम रक्षा के लिए हैं। इसके विपरीत यज्ञ-संस्कृति वाले धनकुबेर – रावण के ज्येष्ठ भ्राता – कहते थे – 'वयं यक्षामः' अर्थात् हम भोगेंगे।[63] अतः राम-रावण संघर्ष वस्तुतः दो संस्कृतियों का संघर्ष था, जिसमें अंततः रावण की पराजय होती है और सम्पूर्ण आर्यावर्त में आर्य-संस्कृति की विजय पताका फहराती है। बहरहाल इस रामायण-महाभारत काल में जो यज्ञ होते थे वे कई प्रकार के होते थे। सामान्य विधिविधानों के लिए छोटे-मोटे यज्ञ रहते थे। जो श्रेष्ठी जन या सपन्न नागरिक करवाते थे। अगस्त्य-विश्वामित्र आदि ऋषि विशिष्ट प्रकार के यज्ञ करते थे जिनके द्वारा वे कुछ खोज-अनुसंधान इत्यादि करके दिव्यास्त्रों की सृष्टि करते थे।[64] रावण इत्यादि इनके यज्ञों में विघ्न इसलिए उपस्थित करते थे कि वे अपने दिव्यास्त्र आर्यों को देते थे। तीसरे प्रकार के विशिष्ट यज्ञ राजाओं द्वारा संपन्न होते थे, जिनका निर्देशन प्रायः राज-पुरोहित करते थे। ऐसे यज्ञों में अश्वमेघ यज्ञ, राजसूय यज्ञ और पुत्रेष्टि यज्ञ आदि आते हैं। 'अपने अपने राम' उपन्यास में हम देखते हैं कि वसिष्ठ बार-बार राम पर दबाव डालते हैं कि उनको अश्वमेघ यज्ञ करना होगा क्योंकि उनके हाथों रावण का वध हुआ है और रावण ब्राह्मण था। ब्रह्महत्या के पाप के निवारण हेतु यह यज्ञ जरूरी है। वे इसके लिए इन्द्र का भी उदाहरण देते हैं कि

वृत्रासुर के वध के बाद इन्द्र को अश्वमेघ करना पड़ा था क्योंकि वृत्रासुर भी ब्राह्मण ही था। राम इस पर व्यंग्य भी करते हैं कि सारे राक्षस ब्राह्मण ही क्यों होते हैं।[65] अंततः राम को भी अश्वमेघ करना ही पड़ता है। राजसूय यज्ञ का उदाहरण हमें महाभारत में मिलता है। पांडव अपनी कर्म-शक्ति से खांडव-वन को भी जब इन्द्रप्रस्थ में बदल देते हैं, उसके बाद वे अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाने का कार्य करते हैं। बहुत-से राजा स्वयं उनके करद राजा होना स्वीकार कर लेते हैं। तब कृष्ण उन्हें राजसूय यज्ञ करने का परामर्श देते हैं। राजसूय यज्ञ का उद्देश्य राजनीतिक एकता का होता है। उसके द्वारा कई राजाओं से मैत्री-संबंध बनाए जा सकते हैं। महाभारत में कृष्ण बार-बार धर्म राज्य की स्थापना की बात करते है। इस राजसूय यज्ञ के पीछे भी उनका यही राजनीतिक उद्देश्य था। कृष्ण अपने समय के माने हुए राजनीतिज्ञ भी हैं, वहां शिशुपाल जैसे प्रबल विरोधी को दूर करने में इसका प्रयोग करते हैं। सब राजाओं के बीच उसे ऐसे मारते हैं कि सबमें उनकी धाक बैठ जाती है, दूसरे वे ऐसी स्थितियों का निर्माण करते हैं कि उनके इस कृत्य को कोई अनुपयुक्त भी नहीं कह सकता।[66]

रही पुत्रेष्टि-यज्ञ की बात। उस समय में पुत्र-प्राप्ति ही विवाह का एक मात्र लक्ष्य समझा जाता था, इसे हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में भी रेखांकित कर चुके हैं। वाल्मीकि रामायण में उल्लेख मिलता है कि दशरथ पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से ऋष्यश्रृंग के निर्देशन में पुत्रेष्टि यज्ञ करवाते हैं और अग्निकुण्ड से उत्पन्न प्रजापत्य पुरुष द्वारा रानियों को पायस प्रदान करने से उन्हें गर्भ रहता है और उसके फलस्वरूप राम-लक्ष्मण आदि का जन्म होता है।[67] अभिप्राय यह कि पुत्रेष्टि-यज्ञ पुत्र-प्राप्ति हेतु किया जाता था। डॉ. नरेन्द्र कोहली ने इस पुत्रेष्टि-यज्ञ वाली बात को नकार दिया है और राम, लक्ष्मण आदि का जन्म अलग-अलग समय पर साधारण तौर पर ही हुआ था ऐसा निरूपित किया है, इतना ही नहीं राम और लक्ष्मण की आयु में पाँच-छः साल का अंतर भी बाताया है।[68] डॉ. कोहली का लक्ष्मण वनवास के समय

अविवाहित है। पुत्रेष्टि-यज्ञ वाली बात को उन्होंने राजाओं के झूठे इतिहास-लेखन की एक रूढ़ि ही माना है।[69]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने पुत्रेष्टि-यज्ञ के संदर्भ में जो संकेतात्मक ढंग से लिखा है उससे स्पष्ट हो जाता है कि 'पुत्रेष्टि यज्ञ' भी एक 'मीथ' ही है, जिसकी आड़ में यथार्थ पर पर्दा डाला जाता था।[70] बहरहाल इस संदर्भ में औपन्यासिकों का अभिमत आधुनिक, विज्ञान-सम्मत और तर्क-सम्मत है। 'पुत्रेष्टि-यज्ञ' में भी शायद 'नियोग-विधि' जैसा ही कुछ होता होगा।

(5) शिक्षा – पद्धति :

शिक्षा का काम अवैतनिक होता था, वैतनिक तो वह महाभारत में द्रोणाचार्य के हस्तिनापुर आने के बाद हुआ। पढ़ने-पढ़ाने का काम ब्राह्मण का होता था। ग्रामीण-क्षेत्रोंमें और कस्बों में गुरुजी (ब्राह्मण) बच्चों को अक्षर-ज्ञान तथा अंकज्ञान की शिक्षा देते थे।[71] 'अभिज्ञान' के सुदामा यही काम तो करते थे, हालांकि वे दर्शन और अध्यात्म-विद्या के उच्च कोटि के विद्वान थे। किन्तु ध्यान रहे यह शिक्षा शूद्रों के लिए नहीं थी। केवल तीन वर्णों के बच्चे उस शिक्षा को प्राप्त कर सकते थे। यदि शूद्रों के लिए शिक्षा वर्जित न होती तो कर्ण को अपनी जाति छिपाने की जरूरत न पड़ती। महाभारत का एकलव्य तो निषादराज का पुत्र था, याने आदिवासी राजकुमार, लेकिन गुरु द्रोण उसे शिक्षा देने से इन्कार कर देते हैं, यह तो एक सर्वविदित तथ्य है।

उच्च-शिक्षा के लिए गुरुकुल और विद्यापीठों की व्यवस्था थी। 'दीक्षा' उपन्यास के ऋषि गौतम ऐसी ही किसी विद्यापीठ के कुलपति थे।[72] डॉ. कोहली ने अपने उपन्यास 'अभिज्ञान' में कृष्ण के समय में भी इन विद्यापीठों में चल रही राजनीति का पर्दाफाश किया है और बताया है कि दरिद्रता के कारण जहां एक ओर सुदामा जैसे विद्वान की घोर उपेक्षा हो रही थी, वहां अपने राजनीतिक सूत्रों के प्रयोग से बहुत-से अयोग्य व्यक्ति विद्यापीठों में उच्च पदों पर आसीन थे। लगता है समय नहीं बदला। आज इस स्वतंत्र भारत में भी

विश्वविद्यालयों की स्थिति 'अभिज्ञान' में निरूपित स्थिति जैसी ही है, जहां 'हंस' भुनगे दाने चुग रहे हैं और कौवों की पांत मोतियों का 'चारा' चर रही है।

रामायण-महाभारत काल के उच्च-शिक्षा के गुरुओं और आचार्यों में गौतम ऋषि, परशुराम, सांदीपनि, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विश्वामित्र, वसिष्ठ, अगस्त्य, वाल्मीकि आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इनमें से बहुतों ने शूद्रों को शिक्षा से वंचित कर रखा था। 'अपने अपने राम' के अगस्त्य ने शम्बूक को अपना शिष्य बनाया था,[73] पर उसकी बड़ी भारी कीमत शम्बूक को चुकानी पड़ी थी। उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा था। उस समय भी वसिष्ठ, द्रोणाचार्य, परशुराम आदि कुछ ऐसे ऋषिमुनि थे जो शूद्रों की शिक्षा के पक्ष में नहीं थे। 'अपने अपने राम' के राम कहते हैं कि "शूद्रों को भी शिक्षा मिले तो उसमें हानि ही क्या है?" इस पर वशिष्ट का कथन है – "कल कहेंगे, जब ज्ञान सबके पास है तो ब्राह्मण जाति की आवश्यकता क्या है? उसे मिटा क्यों न दिया जाए? शास्त्र ब्राह्मण की जीविका का साधन है, ज्ञान उसका हथियार है। वह इस साधन को, इस हथियार को उससे छीनकर उसे असहाय बना देना चाहते हैं। वसिष्ठ ऐसा नहीं होने देंगे। राम जब यह कहते हैं कि ज्ञानी शूद्र भी हो सकता है तो वह कहते हैं कि ब्राह्मण और शूद्र में कोई अंतर ही नहीं। कहते है जो पोत और रथ बनाता है, जो भवन बनाता है, जो शल्य-क्रिया करता है, जो धातुकर्म करता है उसका शिक्षित होना उतना ही आवश्यक है जितना ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य का। वसिष्ठ नहीं सहन करेंगे इस प्रकार की अपमानजनक तुलना। नहीं सहन करेंगे यह खुला ब्रह्मघात।"[74]

वसिष्ठ के उक्त कथन से इतना तो स्पष्ट है कि तीन वर्णों के लिए शिक्षा वर्जित नहीं थी, पर शूद्रों के लिए थी। राम चाहते थे कि शूद्रों को भी शिक्षा का अधिकार मिले जो वसिष्ठ कतई-कतई नहीं चाहते थे। समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को शिक्षा से वंचित करना किसी दृष्टि से समुचित नहीं कहा जा सकता और यही हुआ था उस प्राचीन काल में।

वर्णोपयोगी शिक्षा के अतिरिक्त उच्च-शिक्षा में धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, मिमांसा, दर्शन, अध्यात्म, योग, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, काव्यशास्त्र, भाषा, व्याकरण, ज्योतिष, चिकित्सा, वास्तुशास्त्र आदि विषयों का ज्ञान दिया जाता था। ब्राह्मणों और क्षत्रियों को शस्त्रास्त्र-शिक्षा तथा युद्धकला भी दी जाती थी। विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्रों को बनाने और चलाने की विधि का भी ज्ञान दिया जाता था। इनमें धनुर्विद्या को श्रेष्ठ माना जाता था।

उस काल में नारी-शिक्षा थी, परंतु वह सीमित-वर्ग तक रही होगी। ऋषि-पत्नियां और ऋषिकन्याएं गुरुकुल में ही रहने के कारण शिक्षित हो जाती थीं। क्षत्रिय राजकुमारियों तथा श्रेष्ठी-कन्याओं की शिक्षा पितृगृह में ही होती थी।[75] स्त्री-शिक्षा में शास्त्र इत्यादि के साथ स्त्री-धर्म और स्त्रियोपयोगी विषयों का ज्ञान दिया जाता था। इस काल में शकुन्तला, लोपामुद्रा, मैत्रेयी, गार्गी, मंदोदरी, सीता, विदुला, गांधारी, कुन्ती, द्रौपदी, सत्यभामा, रुक्मिणी, योगिनी सुलभा, तपस्विनी शाण्डिल्य दुहिता, सिद्धा शिवा जैसी कुछ शिक्षित व विदुषी नारियों के उल्लेख मिलते हैं। परंतु यह शिक्षा सीमित वर्ण और वर्ग तक थी, उसमें जनसाधारण को कोई स्थान नहीं था।

(6) संस्कृतियों के प्रकार :

रामायण-महाभारतकाल में, विशेष रूप से रामायणकाल में, हमें दो प्रकार की संस्कृतियां मिलती हैं – आर्य-संस्कृति और रक्ष-संस्कृति। आर्य-संस्कृति पितृसत्तात्मक थी। पितृवंशमूलक होने के कारण उसमें जो परिवर्तन आये, स्त्रियों के अधिकार छिजते और छिनते गये, उसकी चर्चा पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम कर चुके हैं। रक्ष-संस्कृति का सूत्र था – 'वयं रक्षामः' – अर्थात् हम रक्षा के लिए हैं। आजकल 'राक्षस' शब्द के मूल अर्थ में गिरावट आ गई है। दुष्ट, नराधम, पापी, अत्याचारी, आततायी व्यक्ति को राक्षस कहा जाता है। डॉ. कोहली ने यही अर्थ ग्रहण किया है, जबकि रामायणकाल में 'राक्षस' एक जाति-विशेष का नाम था। जो 'रक्ष-संस्कृति' में मानते थे, वे सब राक्षस कहलाते थे और राक्षस होना कोई बुरी बात न थी, बल्कि उनके अपने मानव-मूल्य व सिद्धान्त थे। आचार्य चतुरसेन

शास्त्री ने अपने उपन्यास 'वयं रक्षासः' में 'राक्षस' के इसी अर्थ को लिया है। राक्षस-संस्कृति मातृ-पूजक थी। शंकर या महादेव के अतिरिक्त वे किसी अन्य देवता की पूजा-अर्चना नहीं करते थे, जबकि आर्य संस्कृति में इन्द्र, वरुण, मित्र (सूर्य), वायु, अग्नि, कुबेर, आदि के साथ त्रिदेवता – ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि की पूजा-अर्चना होती थी। आर्य-संस्कृति यज्ञ-प्रधान थी, जब कि रक्ष-संस्कृति यज्ञ-विरोधी थी। आर्यों में वर्ण-व्यवस्था दृदमूल होती जा रही थी, जबकि रक्ष-संस्कृति में सम्पूर्ण मानव-जाति को एक सूत्र में पिरोने की बात थी। इसके अतिरिक्त वानर, गध्र, ऋक्ष, गरुड़, जटायु आदि आदिवासी जातियां थीं उनकी अपनी अलग संस्कृति थी।

(7) हरण, अपहरण :

किसी स्त्री को जबरदस्ती उसकी इच्छा के खिलाफ़ उठा जाना 'अपहरण' कहलाता था। रावण ने सीता का 'अपहरण' किया था। भीष्म काशीराज के यहां से जो अम्बा, अंबिका और अंबालिका को उठा लाये थे, उसे भी 'अपहरण' ही कहा जायेगा। परंतु कोई स्त्री यदि किसी को चाहती हैं और उसके अभिभावक उसका विवाह अन्यत्र कर देना चाहते हैं और तब वह अपने प्रेमी को गुप्त-संदेश द्वारा उसे उठा ले जाने की बात करती है और उसका प्रेमी उसे उठा जाता है तो उसे 'हरण' कहते थे। क्षत्रियों में यह एक आम बात थी और इस तरह के 'हरण' को बुरा नहीं समझा जाता था। कृष्ण रुक्मिणी, सत्यभामा आदि का हरण ही करते हैं। बाण-पुत्री उषा का भी हरण ही हुआ था। सुभद्रा के हरण में तो स्वयं कृष्ण की भी सहायता थी। हरण क्षत्रियों में धर्म-सम्मत था, परंतु अपहरण तो हर हालत में निंदनीय ही समझा जाता था।

(8) युद्ध के प्रकार :

रामायण-महाभारतकाल में राजाओं के बीच छोटे-छोटे युद्ध तो होते रहते थे। कई बार शक्ति-संपन्न राजा अपने राज्य-विस्तार के लिए दूसरे राज्यों पर आक्रमण करता था और उनके बीच युद्ध होते थे। पराजित होने पर वह राजा विजेता राजा का करद हो जाता

था, उसकी अधीनता को स्वीकार कर लेता था। कई बार विजेता राजा पराजित राजा को अपमान-जनक संधि के लिए विवश करता था। भीष्म ने गांधार-नरेश को पराजित कर संधि के रूप में गांधारी का विवाह धृतराष्ट्र से करवाया था।[76] कैकेयी-दशरथ-विवाह भी ऐसी ही विवशता का परिणाम था।[77] परंतु ऐसे छोटे-मोटे युद्धों के उपरांत इस काल-खण्ड में हमें कुछ महायुद्ध भी मिलते हैं – सभी देवासुर संग्राम, राम-रावण युद्ध, कुरुक्षेत्र का युद्ध आदि की गणना हम ऐसे महायुद्धों में कर सकते है। इन युद्धों के अंतर्गत भी तरह-तरह के युद्ध होते थे, जैसे द्वन्द्व-युद्ध, संशप्तक-युद्ध, द्वैरथ-युद्ध, चक्रव्यूह-युद्ध आदि आदि। दो योद्धाओं के बीच जो युद्ध होता है, उसे द्वन्द्व-युद्ध कहा जाता है। जरासंघ-भीम का जो युद्ध था वह द्वन्द-युद्ध था। तत्कालीन क्षत्रिय-जीवन के जो नियम थे, उनके तहत यदि किसी क्षत्रिय को कोई व्यक्ति द्वन्द-युद्ध का आह्वान दें तो वह इन्कार नहीं कर सक्ता। जरासंघ को खुले युद्ध में हराना मुश्किल था इसलिए कृष्ण यह रास्ता चुनते हैं और भीम द्वारा उसका वध करवाते हैं।[78] इसी तरह महाभारत के युद्ध में अंतिम निर्णायक क्षणों में दुर्योधन एक सरोवर में छिप जाता है। पांडव उसे ढूढकर उससे द्वन्द्व-युद्ध की मांग करते हैं। दुर्योधन जिस हथियार से लड़ना चाहे और पाँच में से जिसके साथ लड़ना चाहे उसके साथ लड़ सकता था, परतु इसे भी दुर्योधन की खानदानी झलकती है कि वह भीम से गदायुद्ध की बात करता है जिसमें छल द्वारा उसे मारा जाता है।[79] संशप्तक युद्ध के दौरान कोई योद्धा दूसरे को अकेले और एक तरफ़ जाकर लड़ने का आह्वान देता है जिसे कोई क्षत्रिय नकार नहीं सकता। कुरुक्षेत्र में त्रिगर्त-नरेश सुशर्मा अर्जुन कि इस प्रकार के युद्ध के लिए कहता है, हालांकि उसमें उसका उददेश्य अर्जुन को युद्धभूमि से अधिक से अधिक समय दूर रखने का ही था।[80] द्वैरथ-युद्ध में दो महारथी अपने-अपने रथों में आसीन होकर युद्ध करते हैं। रामायण में राम-रावण का द्वैरथ युद्ध और महाभारत में अर्जुन-कर्ण का द्वैरथ युद्ध देखने-सुनने लायक था। महाभारत में अभिमन्यु का वध चक्रव्यूह-युद्ध के दौरान होता है। हालांकि वह भी निति-सम्मत नहीं था। चक्रव्यूह में हारे हुए योद्धा पुनः युद्ध में संलग्नित नहीं हो सकते थे, किन्तु अभिमन्यु-वध प्रसंग में सारे हारे

हुए महायोद्धा अभिमन्यु का घेरकर, अंततः उसको मार डालते हैं।[81] ऐसा कहा गया है कि महाभारत में केवल कुछेक लोगों को इस युद्ध का ज्ञान था। उन लोगों में कृष्ण, अर्जुन, द्रोणाचार्य आदि आते हैं। इसका थोड़ा बहुत ज्ञान अभिम्न्यु को था। अतः अर्जुन को संशप्तक युद्ध में व्यस्त रखकर उसकी अनुपस्थिति में द्रोणाचार्य चक्रव्यूह युद्ध की योजना बनाते हैं।

(9) शस्त्रास्त्रों के प्रकार :

रामायण-महाभारत में जिनसे युद्ध लड़ा जाता था उन हथियारों के दो प्रकार थे – शस्त्र और अस्त्र। शस्त्र को हाथ में धारण करके युद्ध होता था। तलवार, खड़ग, परशु, हल, गदा आदि इस प्रकार के शस्त्र थे। अस्त्र को फ़ेंका जाता था। बाण, भाला आदि की गणना अस्त्रों में होती थी। छुरी और कटार आदि शस्त्र भी थे और अस्त्र भी। युद्ध का दारोमदार धनुर्धारियों पर रहता थ। राम, रावण, अर्जुन, भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण आदि अपने समय के माने हुए धनुर्धारी योद्धा थे। एकलव्य होता यदि उसका उसका अंगूठा न कटवा लिया जाता। परशु भी प्रमुख शस्त्रों में माना जाता था। परशुराम और रावण का यह मुख्य हथियार था, गदा से युद्ध करने वालों की एक अलग ही श्रेणी होती थी। मल्ल-युद्ध में पारंगत योद्धा प्रायः गदा-युद्ध में माहिर होते थे। हनुमान, भीम, दुर्योधन, बलराम आदि गदा-युद्ध के लिए जाने जाते हैं। दुर्योधन ने गदायुद्ध की शिक्षा बलराम से ग्रहण की थी। कृष्ण का विशेष हथियार सुदर्शन था। उसे ऊंगली पर घूमाकर वे इस तरह फ़ेंकते थे कि जिसके लिए वह छोड़ा जाता था, उसकी गरदन शरीर से अलग हो जाती थी।[82] बाण-धनुष आदि अस्त्र भी दो प्रकार के होते थे—दिव्यास्त्र और देवास्त्र। दिव्यास्त्र का ज्ञान अर्जित करना पड़ता था। वनवास के दौरान अर्जुन देवभूमि में दिव्यास्त्रों के ज्ञान के लिए ही गया था। बहुत से दिव्यास्त्रों का ज्ञान उसे द्रोणाचार्य द्वारा ही मिल गया था, परंतु और भी अधिक शक्ति-संपन्न होने के लिए वह देवभूमि गया था। दिव्यास्त्रों का पुनर्निमाण भी किया जा सकता है, किन्तु देवास्त्र का प्रयोग एक ही बार किया जाता है। रामायण में राम को अनेक दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों की प्राप्ति

विश्वामित्र, अगस्त्य, तथा विभिन्न देवताओं से हुई थी। राम-रावण युद्ध में रावण का वध जिससे होता है वह ब्रह्मास्त्र देवास्त्र ही था।[83] महाभारत में घटोत्कच का वध देवास्त्र से ही हुआ था। वह भी कृष्ण की कूटनीति थी। घटोत्कच को कहा गया था कि वह दुर्योधन के पीछे ही पड़ जाय, अतः जब दुर्योधन के प्राणों पर खतरा मंडराने लगता है तब वह कर्ण से कहता है कि वह उस देवास्त्र का उपयोग कर डाले, अन्यथा कर्ण ने उसे अर्जुन के लिए बचा के रखा था।[84] सुदर्शन चक्र भी देवास्त्र ही था जो कृष्ण को अग्नि द्वारा प्राप्त हुआ था। अग्नि कृष्ण को वरुण की दी हुई कौमोदकी नामक गदा भी देते हैं।[85]

(10) युद्ध के नीति-नियमः

रामायण-महाभारत काल के समय जो युद्ध होते थे, उनके कुछ नीति-नियम थे। युद्धों में पादाति पादातियों के साथ, रथयुक्त रथवालों के साथ, अश्वारोही अश्वारोहियों के साथ युद्ध करते थे। युद्ध में यदि कोई योद्धा द्वन्द्व-युद्ध या संशप्तक युद्ध की मांग करे तो उसे नकारा नहीं जाता था। उस समय युद्ध दिन में होते थे और रात्रि के पूर्व युद्ध-विराम हो जाता था। महाभारत में तो यहां तक कहा गया है कि रात के समय वे एक दूसरे की छावनियों में भी जाते थे और परस्पर कुशल-क्षेम भी पूछते थे। युद्ध के नियमों में यह भी शामिल था कि कोई भी सच्चा क्षत्रिय कभी निहत्थे व्यक्ति पर वार नहीं करेगा। द्वैरथ युद्ध में रथ से नीचे उतरे हुए व्यक्ति पर वार करना भी नीति-विरुद्ध अतएव धर्म-विरुद्ध माना जाता था। परंतु रामायण में मेघनाद का वध भी नीति-विरुद्ध जाकर किया गया था। महाभारत में भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन आदि का वध युद्ध के नियमों के विरुद्ध जाकर ही किया गया था। कौरव-पक्ष में अभिमन्यु का वध निति-विरुद्ध था।

(11) भाषा :

भाषा देशकाल या परिवेश का एक अभिन्न अंग है। भाषा के कारण ही उपन्यास में वास्तव का निर्माण होता है। उपन्यास में भाषा

के दो स्तर होते हैं – लेखकीय भाषा और पात्रों की भाषा। लेखकीय भाषा तो मानक भाषा होती है, परंतु पात्रों की भाषा का सम्बन्ध बोलचाल की भाषा से होता है। हमारा शोध-विषय पौराणिक उपन्यासों से सम्बद्ध है। अतः भाषा भी पौराणिक परिवेश के अनुरुप आयेगी। अब रामायण-महाभारतकाल की भाषा तो संस्कृत या प्राकृत थी। संस्कृत नाटकों में उच्च-वर्ग के पुरुष पात्रों की भाषा तो विशुद्ध संस्कृत हुआ करती थी, परंतु निम्न वर्ग के पात्र तथा नारी-पात्रों की भाषा प्राकृत होती थी। किन्तु हिन्दी में तो संस्कृत-प्राकृत का प्रयोग कर नहीं सकते। अतः एक बीच का रास्ता निकाल गया है। वह रास्त यह है कि भाषा यथासंभव संस्कृत-निष्ठ रहे। संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रयोग यथासंभव अधिक रहे। किन्तु यहां लेखक को इस बात का ध्यान भी रखना होगा कि भाषा संस्कृत-बहुलता के कारण अधिक क्लिष्ट व कृत्रिम न हो जाए।

पौराणिक उपन्यासकारों में डॉ. नरेन्द्र कोहली ने संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करते हुए भी उसे सरल व बोधगम्य रहने दिया है। उनके उपन्यासों में से केवल एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है—

"मैंने तो तुम्हें बता दिया तपस्वि! कि मैं क्या चाहता हूं! 'चित्रवाहन (मणिपुर का राजा) ने अपनी बात आगे बढ़ाई,'अब तुम बताओ, तुम्हारे मन में क्या है?... आप अपनी कन्या का दान मुझे कर दें!... चित्रांगदा संकुचित होकर पीछे हट गई, और चित्रवाहन ने जैसे कुछ चौंककर अर्जुन की और देखा, 'कौन हो तुम?'... 'मैं हस्तिनापुर के स्वर्गीय सम्राट पांडु का तीसरा पुत्र कौन्तेय अर्जुन हूं।' अर्जुन बोला, 'अब हम हस्तिनापुर में नहीं है। कौरवों की प्राचीन राजधानी खांडवप्रस्थ में आ गये हैं। वहां यमुना तट पर हमने एक नया नगर बसाया है, 'इन्द्रप्रस्थ!' मेरे बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर वहां के राजा हैं। ...'देखो पार्थ! मेरी एक ही पुत्री है। मैंने तुमसे पहले ही कहा कि हेतु-विधि से इसे मैं अपना पुत्र मानता हूं। तुम इसका अर्थ समझते हो?'... 'चित्रांगदा का पुत्र धर्मतः मेरा पुत्र माना जाएगा। वह मेरे स्थान पर मणिपुर पर राज्य करेगा। अपना पहला पुत्र मुझे दे सकोगे? यह चित्रांगदा के साथ विवाह का शुल्क है।"[86]

संस्कृत-निष्ठ भाषा होते हुए भी यहां भाषा में सादगी और बोधगम्यता है। क्लिष्टता और कृत्रिमता का अभाव है। सामान्य संस्कृत-ज्ञान होने पर समझा जा सकता है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के पौराणिक उपन्यास 'वयं रक्षामः' में हमें भाषा के तीन स्तर प्राप्त होते हैं—(1) संस्कृत-बहुला भाषा, (2) संस्कृत भाषा और (3) बोलचाल की सादी भाषा। तीनों के एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है—

(1) संस्कृत-बहुला भाषा का उदाहरण—"कज्जल-कूट के समान गहन श्यामल, अनावृत, उन्मुख यौवन, नीलमणि-सी ज्योतिर्मयी बड़ी-बड़ी आंखे, तीखे कटाक्षों से भरपूर—जिनमें मद्यसिक्त, लाल डोरे; मदघूर्णित दृष्टि, कम्बूग्रीवा पर अधर-बिम्ब से गहरे लाल, उत्फुल्ल अधर, उज्जवल हीरकावलि-सी धवल दंत-पंक्ति, सम्पुष्ट, प्रतिबिम्बित कपोल और प्रलय मेघ-सी सघन गहन, काली-घुघराली मुक्त्कुन्तलावलि, जिनमें गूंथे ताजे कमल-दल-शतदल, कण्ठ में स्वर्णतार-ग्रथित गुंजा-माल; अनावृत उन्मुख, अचल, यौवन-युगल पर निरंतर आघात करता हुआ अंशुफ़लक, मांसल भुजाओं में स्वर्णलय और क्षीण कटि में स्वर्णमेखला; रक्ताम्बरमंडित सम्पुष्ट जघन-नितम्ब, गुल्फ़ में स्वर्ण-पैजनियां, उनके नीचे हेमतार-ग्रथित कच्छप-चर्म-उपानत-आवृत चरण-कमल। सद्यः किशोरी।"[87]

यह है वर्णन दैत्येन्द्र के सेनापति की कन्या दैत्यबाला का जो पौलस्त्य वैश्रवण रावण से बालि-द्वीप में मिली थी। इसमें कुछेक शब्दों को छोड़कर संस्कृत-बहुल समास-युक्त कठिन भाषा का प्रयोग किया गया है।

(2) आचार्यश्रीने कहीं-कहीं तो पृष्ठ के पृष्ठ संस्कृत में ही लिखे हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—" जनक ने कहा—'श्रूयतामस्य धनुष, यदर्थमिह तिष्ठति, भूतलादुत्थिता ममात्मजा सीतेति विश्रुता वीर्यशुल्केति। एते सर्वे नृपतयो ममात्मजां वरयितुमागताः। तेषां वीर्य जिज्ञासमानानां शैवं धनुरुपाहृतम्। ये न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुष-स्तोलने पि वा, ते अवीर्या नृपतयः प्रात्याख्याताः। तदेतद् परमभास्वरं

धनुर्दर्शय रामाय। यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणम् सुतामयोनिजां वीर्यशुल्कां सीता दद्यां दाशरथये हम्'।"[88]

जनक का यह सम्भाषण पूर्णरुपेण संस्कृत में है। राम धनुष उठाने जाते हैं उसके पूर्व का यह कथन है। किन्तु इससे उपन्यास की भाषा दुरुह हो गयी है। और ऐसे तो अनेक पृष्ठ हैं।

(3) उपन्यास जहां एक तरफ़ इतनी संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है, वहां दूसरी तरफ़ एकदम सीधी-सादी बोलचाल की भाषा भी प्रयुक्त हुई है, यथा—"राजा तेरी बहुत लल्लोचप्पो करेगा, रत्नाभरण देगा, तू सभीको ठुकरा देना। बस यही मांगना—भरत को राज्य और राम को वनवास। भरत के राज्य करने पर प्रजा भरत से प्रेम कर उठेगी और सबको भूल जाएगी। भरत निश्चल होकर राज्य करेंगे और तू भविष्य में कोसल-राजमाता कहाकर पूजित होगी। तेरी सौतें और उनके पुत्र तेरे सेवक होंगे, फ़िर तू उन पर चाहे जितना अनुग्रह करना।"[89]

उपर्युक्त कथन मंथरा का है, यहां लेखक ने एकदम सरल व आमफ़हम की भाषा का प्रयोग किया है। यदि जगह-जगह लेखक ने संस्कृत का इतना ज्यादा आग्रह न रखा होता तो उपन्यास अधिक पठनीय बन पड़ता। उसकी भाषागत दुरुहता कई बार खलने लगती है।

डॉ. भगवतीशरण मिश्र के पौराणिक उपन्यासों की भाषा भी विषय और परिवेश के अनुरुप है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है – "जिस तरह जलमें डूबता हुआ मनुष्य चारों और हाथ-पैर मारता है और एक तिनके को भी सहारा हेतु पकड़ना चाहता है; जिस तरह जीवन के अंतिम क्षणों में उखड़ती सांसो के एक सूत्र को भी पकड़ व्यक्ति संसार से अन्त तक जुड़े रहने का अथक प्रयास करता है; जिस तरह सिक्ता-कणों से भरे मरु-कान्तार का मृग सूर्य-किरणों के चमकते दूर के हर कण में पानी का आभास पा अपने सूखते कण्ठ को सिक्त करने हेतु निरर्थक दौड़ लगाता है; जिस तरह डाल से छूटा बन्दर हर पात को पकड़ प्राणों की रक्षा को व्यग्र हो उठता है; उसी तरह, हां

उसी तरह कंस अपने प्राणों पर आए संकट को टालने के लिए अपने अव्यवस्थित मन के अश्वों को विभिन्न दिशाओं में दौड़ाने लगा।"[90]

यहां पर लेखक ने कंस की भयातुर मनःस्थिति के निरूपण के लिए समासशैली तथा मालोपमा अलंकार का प्रयोग किया है। संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग भी है।

डॉ. भगवानसिंह के उपन्यास 'अपने अपने राम' में सहज, सरल, सुबोध, संस्कृत-निष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है। किन्तु संस्कृत-निष्ठता के कारण कहीं भी भाषा अबोधगम्य या बोझिल नहीं हुई है। यथा –

"वसिष्ठ ऐसे किसी ब्राह्मण को सच्चा ब्राह्मण नहीं मानते जिसे पूरी ब्राह्मण जाति की चिन्ता न हो। यही है ब्राह्मण का त्याग। यही है उसकी परदुखकातरता। यही है उसकी लोकोपकारी दृष्टि। क्षत्रिय केवल अपने लिए राज्य चाहता है। वैश्य केवल अपने लिए लाभ चाहता है। अकेला ब्राह्मण है जो पूरी ब्राह्मण जाति की चिन्ता करता है। उसके सम्मान की, उसके भोजन-वस्त्र और आवास की चिंता करता है। जो ऐसा नहीं करता वह ब्राह्मण होकर भी ब्राह्मण नहीं है। वह ब्रह्मकुलांगार है। विश्वामित्र ऐसे ही कुलाद्वेषी हैं।"[91]

'सूतो वा सूतपुत्रो वा' डॉ. बच्चनसिंह का कर्ण के जीवन पर केन्द्रित उपन्यास है। जहां अन्य पौराणिक उपन्यासकारों ने संस्कृत-बहुला भाषा का प्रयोग किया है। वहां डॉ. बच्चन सिंह ने सहज, सरल सुबोध भाषा का प्रयोग किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है – "अर्जुन के प्रति मेरे मन में सम्मान का भाव जागा। गुरुवध के लिए वह इतना बड़ा झूठ नहीं बोल सकता था। लगा कि उसका व्यक्तित्व पूर्णतः नष्ट नहीं हो पाया है। कृष्ण ने धर्मराज को पकड़ा। इससे पता लगता है कि किसी वस्तु के साथ लगा हुआ विशेषण वस्तु की वास्तविकता को ढंक लेता है। इतना बड़ा अधर्म वही कर सकता है। जो लोक में धर्मराज के नाम से विख्यात हो। 'धर्मराज' शब्द का इतना व्यंग्य-गर्भ प्रयोग व्यास जैसा महाकवि ही कर सकता है। पर इस धर्म-सम्मूढ देश में अधर्मराज धर्मराज ही कहा जायेगा।"[92]

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं –

1. 'परिवेश' को 'देशकाल' भी कहते हैं। 'देशकाल' में दो शब्द हैं – 'देश' और 'काल'। 'देश' का अर्थ स्थान-विशेष से होता है। दूसरे शब्दों में देशगत परिवेश का अर्थ होगा – 'भौगोलिक परिवेश'। भौगोलिक परिवेश की दृष्टि से आचार्य चतुरसेन शास्त्री का पौराणिक उपन्यास 'वयं रक्षामः' महत्वपूर्ण है। यह उपन्यास रावण को केन्द्र में रखकर चला है। अतः उसका भौगोलिक परिवेश काफी विस्तृत है। उसमें आन्ध्रालय से लेकर भारत के दक्षिणावर्त तक के प्रदेशों को लिया गया है। लेखक ने बताया है कि सात हजार वर्ष पूर्व की भौगोलिक स्थिति कुछ भिन्न प्रकार की थी। उस समय 'आस्ट्रेलिया' इतना दूर नहीं था। वह दक्षिण एशिया के सप्तद्वीपों से संलग्नित था। यह आस्ट्रेलिया ही उपन्यास में निरूपित आन्ध्रालय है। अफ्रिका भी उस समय भारतवर्ष से संलग्नित था। पौराणिक वृतान्तों में जिसे 'पाताल' कहा गया है, वही वर्तमान एबीसीनिया है। पौराणिक कुशद्वीप ही अफ्रिका है। भारत के उत्तरापथ के ऊपर गन्धर्वों, किन्नरों, देवों और असुरों के जनपद थे। उसके नीचे का मैदानी प्रदेश कश्मीर से लेकर विन्ध्याचल तक का आर्यावर्त कहलाता था। विन्ध्याचल से गोदावरी तक फेला हुआ स्थान दण्डकारण्य कहलाता था। रावण के साम्राज्य की सीमा वहां तक विस्तृत थी। उपन्यास में जिन अंगद्वीप, यवद्वीप, मलयद्वीप, शंखद्वीप और वाराहद्वीप आदि की चर्चा हैं वे वर्तमान के क्रमशः सुमात्रा, जावा, मलाया, बोर्नियो और मेडागास्कर हैं।
2. उपर्युक्त उपन्यास तथा अन्य पौराणिक उपन्यासों में जो स्थान वर्णित हैं उनके वर्तमान नाम के लिए 'भारतीय मिथक कोश' का सहारा लिया गया है और भौगोलिक परिवेश के अंतर्गत उसकी ब्यौरेवार विस्तृत सूची भी दी गयी है।

3. पौराणिक उपन्यासों में जो काल निरूपित है, वह मोटे तौर पर रामायण (त्रेता) और महाभारत (द्वापर) का समय है। उपन्यासकारों ने काल-विषयक अवधारणा को पुराणों के हिसाब से न लेकर ऐतिहासिक दृष्टि को ध्यान में रखकर लिया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने रामायण-युग के पूर्व के जिन नृवंशों की चर्चा की है उसका समय सात हजार वर्ष पूर्व का है। उसी तरह रामायण और महाभारत का समय क्रमशः पाँच हजार वर्ष और चार हजार वर्ष पूर्व का निर्धारित हुआ है।

4. पहले मातृसत्ताक समाज था, परंतु बाद में जैसे-जैसे आर्यों का वर्चस्व बढ़ता गया मातृसत्ताक समाज पितृसत्ताक समाज में परिवर्तित होता गया। उससे राजनीतिक दृष्टि से अधिक संगठित व शक्तिसंपन्न होते गये, वहां स्त्रियों की स्थिति अत्यधिक चिन्ताजनक होती गई, उनके मानवीय अधिकार छिझते और छिनते गये। उसमें भी उत्तर-पश्चिम के आनव-वंशों में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी, परंतु पूर्व के मानव-वंशियों में पूर्णरूपेण पुरुषों के संरक्षण में ही रहती थीं। दक्षिण में तथा आदिवासी जातियों में अपेक्षाकृत स्त्रियों को कुछ स्वतंत्रता थी। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि स्त्रियां दुःखी थीं। उनके मान-सम्मान, सुख-दुःख, सुविधा-असुविधा का ध्यान रखा जाता था; परंतु वह तब तक जब तक स्त्री पुरुष के वर्चस्व को स्वीकार करती थी। उसकी अपनी कोई आवाज़ नहीं थी। घर-परिवार के बाहरी-सामाजिक निर्णय पुरुष-वर्ग और पुरोहित ब्राह्मण इत्यादि लेते थे।

5. पौराणिक उपन्यासों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का अध्ययन-विश्लेषण निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया गया है – सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, विवाह-संस्कार, विवाहों के प्रकार, शिक्षा-पद्धति, पुत्रों के प्रकार, यज्ञ के प्रकार, संस्कृतियों के प्रकार, युद्ध के प्रकार, शस्त्रास्त्रों के प्रकार, नियोग-पद्धति, युद्ध के नीति-नियम, भाषा आदि-आदि।

सन्दर्भानुक्रम :

1. वयं रक्षामः : आचार्य चतुरसेन शास्त्री : पृ. 13 ।
2. वही : पृ. 18 ।
3. वही : पृ. 18 ।
4. वही : पृ. 18 ।
5. वही : पृ. 18 ।
6. वही : पृ. 20 ।
7. वही : पृ. 31 ।
8. वही : पृ. 32 ।
9. वही : पृ. 32 ।
10. वही : पृ. 33 ।
11. वही : पृ. 33 ।
12. वही : पृ. 35 ।
13. वही : पृ. 34 ।
14. वही : पृ. 35 ।
15. वही : पृ. 35 ।
16. वही : पृ. 35 ।
17. वही : पृ. 35-57 ।
18. वही : पृ. 60 ।
19. भारतीय मिथक कोश : डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति : पृ. 375-377 ।
20. वयं रक्षामः : पृ. क्रमशः 25 ।
21. वही : पृ. 25 ।
22. भारत का प्राचीन इतिहास : डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार : पृ. 122 ।
23. वयं रक्षामः : पृ. 33 ।
24. वही : पृ. 16 ।
25. वही : पृ. 16 ।
26. वही : पृ. 17 ।
27. वही : पृ. 68 ।

28. अपने अपने राम : डॉ. भगवानसिंह : पृ. 310-311 ।
29. वही : पृ. 311 ।
30. वही : पृ. 312 ।
31. वही : पृ. 312 ।
32. वयं रक्षामः -- पृ. 190 ।
33. सूतोवासूतपुत्रोवा : डॉ. बच्चनसिंह : पृ. 246-247 ।
34. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डॉ. त्रिभुवनसिंह : पृ. 690 ।
35. धर्म : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 95-100 ।
36. अवसर : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय – 1 : पृ. 190-199 ।
37. बंधन : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 469-472 ।
38. पुरुषोत्तम : डॉ. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 499 ।
39. अपने अपने राम : डॉ. भगवानसिंह : पृ. 312 ।
40. भारतीय समाज और संस्कृति : डॉ. एम. एल. गुप्ता तथा डॉ. डी. डी. शर्मा : पृ. 360 ।
41. वयं रक्षामः : पृ. 238-239 ।
42. वही : पृ. 240 ।
43. अपने अपने राम : पृ. 66 ।
44. वही : पृ. 66 ।
45. वही : पृ. 239 ।
46. वही : पृ. 243 ।
47. द्रष्टव्य : वयं रक्षामः : पृ. 240 ।
48. महाभारतकालीन समाज : सुखमय भट्टाचार्य : अनुवादिका-पुष्पा जैन : पृ. 3-4 ।
49. वयं रक्षामः : आचार्य चतुरसेन शास्त्री : पृ. 240 ।
50. वही : पृ. 240 ।
51. बंधन : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 334 ।
52. वयं रक्षामः : पृ. 95-148 ।
53. द्रष्टव्य : विवाह के प्रकारों के लिए : महाभारतकालीन समाज : पृ. 9-11 ।

54. वही : पृ. 11 ।
55. वही : पृ. 11 ।
56. धर्म : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 95-100 ।
57. बंधन : डॉ. कोहली : पृ. 228-277 ।
58. वही : पृ. 419-445 ।
59. वयं रक्षामः : पृ. 211 ।
60. अपने अपने राम : डॉ. भगवानसिंह : पृ. 9-10 ।
61. वही : पृ. 176 ।
62. वही : पृ. 53 ।
63. वयं रक्षामः : पृ. 67 ।
64. दिक्षा : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय-1 : पृ. 42 ।
65. वयं रक्षामः : पृ. 6-7 ।
66. धर्म : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 319-334 ।
67. वाल्मीकि रामायण : 1 (14) 1-2 ।
68. नरेन्द्र कोहली ने कहा : पृ. 29, 41 ।
69. वही : पृ. 41 ।
70. वयं रक्षामः : पृ. 74-238 ।
71. अभिज्ञान : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 30 ।
72. दीक्षा : अभ्युदय-1 : पृ. 96 ।
73. अपने अपने राम : पृ. 311 ।
74. वही : पृ. 177-178 ।
75. महाभारतकालीन समाज : पृ. 63 ।
76. बंधन : पृ. 301 ।
77. अवसर : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय-1 : पृ. 234 ।
78. धर्म : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 281 ।
79. निर्बन्ध : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 476 ।
80. वही : पृ. 51 ।
81. वही : पृ. 87-88 ।
82. धर्म : पृ. 333 ।
83. वयं रक्षामः : पृ. 420 तथा युद्ध : डॉ. कोहली अभ्युदय-2 : पृ. 608 ।

84. निर्बन्ध : पृ. 243 ।
85. धर्म : पृ. 235 ।
86. वही : पृ. 133 ।
87. वयं रक्षामः : पृ. 11 ।
88. वही : पृ. 206 ।
89. वही : पृ. 249 ।
90. प्रथम पुरुष : डॉ. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 44 ।
91. अपने अपने राम : पृ. 178 ।
92. सूतो वा सूतपुत्रो वा : पृ. 223 ।

* * *